कलाकार पात्रों का आत्मसंघर्ष - हिन्दी उपन्यासों में

Conflicts of Artist Characters in Hindi Novels

कालिकट विश्वविद्यालय की डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी
की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

Thesis submitted to the University of Calicut
for the Degree of 'Doctor of Philosophy' in HINDI

May 2015

निर्देशक :

डॉ. के. मुहम्मद
प्रोफेसर (से.नि)
हिन्दी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय

प्रस्तुतकर्ता :

धन्या. पी.एस
शोध छात्रा
हिन्दी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय

Supervising Teacher:

Dr. K. Muhammed
Professor (Rtd.)

Submitted by:

Dhanya. P.S.
Research Scholar

DEPARTMENT OF HINDI
University of Calicut

CERTIFICATE

This is to certify that the Thesis entitled **"Conflicts of Artist Characters in Hindi Novels"** is a bonafide record of research work carried out by **Smt. Dhanya. P.S.,** under my guidance and supervision and that no part of this thesis has hitherto been submitted for any Degree, Diploma or other similar title in any other University.

Dr. K. Muhammed
[Research Guide]
Professor (Rtd.)
Department of Hindi
University of Calicut

C.U. Campus
Date :

DECLARATION

I, **Dhanya. P.S.**, do hereby declare that this thesis entitled **"Conflicts of Artist Characters in Hindi Novels"** is a record of bonafide research work carried out by me and this has not previously formed the basis for the award of any Degree, Diploma, Associateship, Fellowship or other similar Title or Recognition before in any other University or Institution.

This research work was supervised by Dr. K. Muhammed, Professor (Rtd.) of the Department of Hindi, University of Calicut.

C.U. Campus
Date:

DHANYA. P.S.
Research Scholar

अनुक्रम

प्राक्कथन i - iv

अध्याय – १ 2 - 39

कला और कलाकार – स्वरूप विवेचन

१ कला का स्वरूप विवेचन

१.१ कला शब्द की उत्पत्ति एवं अर्थ

१.२ कला की परिभाषाएँ

१.२.१ भारतीय मनीषियों की राय

१.२.२ पाश्चात्य मनीषियों की राय

१.३ कलाओं का वर्गीकरण एवं परिचय

१.३.१ प्राचीन विचारधाराएँ

१.३.२ आधुनिक विचारधाराएँ

१.४ ललित कलाओं का विश्लेषण

१.४.१ काव्य कला

१.४.२ संगीत कला

१.४.३ नृत्य एवं नाट्य कला

१.४.४ चित्रकला

१.४.५ मूर्तिकला

१.४.६ वास्तुकला या स्थापत्य कला

१.५ कलाकार का स्वरूप विवेचन

१.५.१ कलाकार - कलाकार शब्द एवं अर्थ

१.५.२ कलाकार एवं सौन्दर्यबोध

१.५.३ कलाकार एवं कारीगर

१.५.४ संवेदन प्रक्रिया के आधार पर कलाकार और साधारण व्यक्ति : एक तुलना

अध्याय – २ **41 - 64**

आत्मसंघर्ष – विश्लेषण और विविध आयाम

२.१ संघर्ष : शब्दिक एवं पारिभाषिक व्यवस्था

२.२ संघर्ष के विभिन्न दृष्टिकोण

२.२.१ संघर्ष का मनोवैज्ञानिक संदर्भ

२.२.२ संघर्ष का समाजशास्त्रीय संदर्भ

२.२.३ संघर्ष की धर्मशास्त्रीय दृष्टि

२.३ संघर्ष के विभिन्न प्रकार

२.३.१ बाह्य संघर्ष

२.३.२ आन्तरिक संघर्ष या आत्मसंघर्ष

२.४ आत्मसंघर्ष का उद्दीपन और भारतीय परिवेश

२.४.१ सामाजिक उद्दीपन

२.४.२ पारिवारिक उद्दीपन

२.४.३ आर्थिक उद्दीपन

२.४.४ धार्मिक उद्दीपन

२.४.५ राजनीतिक उद्दीपन

२.४.६ वैयक्तिक उद्दीपन

२.५ कलाकार और आत्मसंघर्ष

अध्याय – ३ **66 - 95**

हिन्दी साहित्य में कलाकार की प्रस्तुति - एक सर्वेषण

३.१ हिन्दी के प्रतिनिधि कविताओं में कलाकार की प्रस्तुति

३.१.१ तुलसीदास - ऐतिहासिक कलाकार पर एक नई दृष्टिकोण

३.१.२ असाध्यवीणा - एक संपूर्ण कलाकार का चित्रण

३.१.३ कालिदास - परकायप्रवेशकार कलाकार

३.१.४ मैं हूँ - एक आम कवि का अथाह रुदन

३.२ हिन्दी के प्रतिनिधि कहानियों में कलाकार की प्रस्तुति

३.२.१ संगीत-समाधि

३.२.२ कला का पुरस्कार

३.२.३ शिव पार्वती

३.२.४ नेपथ्य का अभिनेता

३.३ हिन्दी के प्रतिनिधि नाटकों में कलाकार की प्रस्तुति

३.३.१ 'आषाढ का एक दिन' में कालिदास

३.३.२ 'खजुराहो का शिल्पी' में चंडवर्मा

३.३.३ 'नायक खलनायक विदूषक' में कपिंजल

३.३.४ 'कोणार्क' में विशु

अध्याय - ४ **97 - 155**

कलाकार पात्रों का आत्मसंघर्ष - हिन्दी उपन्यासों में

४.१ प्रतिनिधि उपन्यासों का सामान्य परिचय

४.१.१ कथा कहो ऊर्वशी – धार्मिक आस्थाओं की गाथा

४.१.२ अन्धेरे बन्द कमरे – अन्धानुकरण की विपत्ति

४.१.३ धूप छाँही रंग – कला का जीवन पक्ष

४.१.४ एक चूहे की मौत – मूल्य परिवर्तन का संघर्ष

४.१.५ मुझे चाँद चाहिए – एक सितारे का स्वप्न

४.१.६ दूध गाछ – परंपरा की विकास यात्रा

४.१.७ आखिरी अढाई दिन – स्रष्टा के मोहभंग का रुदन

४.१.८ अमृत और विष – अनुभवों के विभिन्न ज़माने से एक यात्रा

४.१.९ पापा के जाने के बाद – नींद से उठने के पहले दो शब्द

४.२ उपन्यासों में चित्रित कलाकार पात्रों का चित्रण

४.२.१ देवेन्द्र सत्यार्थी के उपन्यास कथा कहो ऊर्वशी में कलाकार पात्र

४.२.२ मोहन राकेश के उपन्यास अन्धेरे बन्द कमरे में कलाकार पात्र

४.२.३ गिरीश अस्थाना के उपन्यास धूप छाँही रंग में कलाकार पात्र

४.२.४ बदी उज़्ज़मा के उपन्यास एक चूहे की मौत में कलाकार पात्र

४.२.५ सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यास मुझे चाँद चाहिए में कलाकार पात्र

४.२.६ देवेन्द्र सत्यार्थी के उपन्यास दूध गाछ में कलाकार पात्र

४.२.७ मधुप शर्मा के उपन्यास आखिरी अढाई दिन में कलाकार पात्र

४.२.८ अमृतलाल नागर के उपन्यास अमृत और विष में कलाकार पात्र

४.२.९ प्रकाश मनु के उपन्यास पापा जाने के बाद में कलाकार पात्र

४.३ कलाकार और आत्मसंघर्ष

४.३.१ मूर्तिकार और आत्मसंघर्ष - कथा कहो ऊर्वशी में

४.३.२ नृत्यांगना और आत्मसंघर्ष - अन्धेरे बन्द कमरे में

४.३.३ चित्रकार और आत्मसंघर्ष - धूप छाँही रंग में

४.३.४ चित्रकार और आत्मसंघर्ष - एक चूहे की मौत में

४.३.५ अभिनेत्री और आत्मसंघर्ष - मुझे चाँद चाहिए में

४.३.६ संगीतकार और आत्मसंघर्ष - दूध गाछ में

४.३.७ अभिनेत्री और आत्मसंघर्ष - आखिरी अढाई दिन में

४.३.८ लेखक और आत्मसंघर्ष - अमृत और विष में

४.३.९ चित्रकार और आत्मसंघर्ष - पापा जाने के बाद में

उपसंहार **157- 161**

संदर्भ ग्रंथ सूची **163 - 166**

प्राक्कथन

वैयक्तिक जीवन के विविध आयामों को एक कानवास में चित्रित करने की क्षमता उपन्यास से ज़्यादा और कोई विधा में नहीं है । समाज से अलग व्यक्ति को और व्यक्ति से अलग समाज को कोई अस्तित्व नहीं है । इसलिए व्यक्ति और उनके चारों तरफ के समाज का अध्ययन उपन्यास से ही हो सकते है ।

परिवर्तित तथा विकसित वस्तु तथा व्यवस्था में जीवन की छाप है । इसलिए समाज को परिवर्तनशील बनाने वाला कलाकार का स्थान कम नहीं । प्रस्तुत शोध नये समाज सृष्टि में सक्रिय कलाकार पर बाह्य संघर्षों का प्रभाव और उनसे उत्पन्न आत्मसंघर्ष तथा प्रतिक्रिया का अध्ययन है ।

कलाकार को पात्र के रूप में चित्रित उपन्यासों के चयन में पहली चुनौती यह थी कि भारतीय साहित्य में चौंसठ कलाओं का उल्लेख मिलता है । इसमें आभूषणों का निर्माण, कपडों को बुनना, बढईगिरी, वृक्षायुर्वेद, भाषाध्ययन आदि को भी कला मानते है । इस दृष्टि में देखे जाये तो सभी उपन्यासों में किसी न किसी प्रकार के कलाकार की प्रस्तुति मिलती है । जैसे मृणाल पांडेय का 'रास्तों पर भटकते हुए' (पत्रकार का संघर्ष), आनंद यादव का 'नटरंग' (तमाशा), अब्दुल बिस्मिल्लाह का 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' (जुलाहा) आदि। इसलिए मैंने कलाकार को केवल ललित कला के कलाकारों तक सीमित कर दिया।

ललित कला के अन्तर्गत काव्यकला, संगीतकला, नृत्य एवं नाटयकला,

चित्रकला, मूर्तिकला एवं वस्तुकला है । उपन्यासों में कलाकार की प्रस्तुति प्राचीन कवियों पर आधारित जीवनीपरक उपन्यासों से शुरू होती है ।

इनमें पहला उपन्यास १९५४ में प्रकाशित रांगेय राघव का 'भारती का सपूत' है । इसमें हिन्दी गद्य साहित्य के कुलपति भारतेन्दु की पारिवारिक समस्याओं को प्रधान विषय के रूप में चित्रिति किया है । इसके बाद वीरेन्द्र मोहन भटनागर, इकबाल बहादूर, बारीद्रनाथ कृष्ण भावुक, विश्वंभर नाथ उपाध्याय, रामकशंकर मिश्र, डॉ. मिथिलेश कुमार, भगवतीशरण मिश्र, अम्बिका प्रसाद दिव्य आदि के उपन्यासों में चित्रित विषयों का अध्ययन किया । इन सब उपन्यासों में वैयक्तिक संघर्षों के बदले सामाजिक बाह्य संघर्षों का चित्रण हुआ है । इसलिए मैंने १९६१ में प्रकाशित मोहन राकेश के 'अन्धेरे बन्द कमरे' से लेकर २०१० में प्रकाशित प्रकाश मनु के 'पापा के जाने के बाद' तक के कलाकार पात्रों पर आधारित उपन्यासों को अध्ययन के लिए चुना ।

प्रस्तुत प्रबन्ध "कलाकार का आत्मसंघर्ष हिन्दी उपन्यासों में " के अध्ययन के संदर्भ में कलाकार का आत्मसंघर्ष और परिवेश और बाह्य संघर्षों से उसका संबंध, अन्तःसंघर्षों के प्रति कलाकार की प्रतिक्रिया और उस पर परिवेश क प्रभाव आदि को विवेचन करने का प्रयास है ।

प्रस्तुत प्रबंध उपसंहार सहित पाँच परिवृत्तों में विभक्त है । प्रथम परिवृत्त में पाँच अध्याय संयोजित है । अध्याय १ और २ में कला शब्द की उत्पत्ति, अर्थ और परिभाषाओं के भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टिकोण है । अध्याय ३ में प्राचीन एवं आधुनिक विचारधाराओं के अनुसार कलाओं का वर्गीकरण है । अध्याय ४ में ललित कलाओं का विश्लेषण और अध्याय

५ में कलाकार शब्द और अर्थ संवेदन प्रक्रिया के आधार पर कलाकार और साधारण व्यक्ति की तुलना है ।

द्वितीय परिवृत्त में पाँच अध्याय है । अध्याय १ में संघर्ष शब्द का अर्थ एवं परिभाषा है । अध्याय २ में संघर्ष के मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्रीय और धर्मशास्त्रीय दृष्टिकोण है । अध्याय ३ में बाह्य और आंतरिक संघर्षों के विभिन्न प्रकार है । अध्याय ४ में भारतीय परिवेश और संघर्षों के विविध उद्दीपन का विश्लेषण है । अध्याय ५ में कलाकार और आत्मसंघर्ष को व्यक्त किया है ।

तृतीय परिवृत्त में उपन्यासों के अलावा अन्य मुख्य सहित्यिक विधाओं में कलाकार की प्रस्तुति है । इसमें कविता, कहानी और नाटकों की प्रतिनिधि रचनाओं के द्वारा एक सर्वेषण है ।

चौथा परिवृत्त में तीन अध्याय है । अध्याय १ में प्रतिनिधि उपन्यासों का सामान्य परिचय, अध्याय २ में उपन्यासों में चित्रित कलाकार का परिचय है, अध्याय ३ में इन कलाकारों के चित्रण से गुज़र कर आत्मसंघर्ष की खोज की गई है ।

प्रत्येक अध्ययन की अपनी सीमाएँ होती है, इस प्रबन्ध की भी है । लेकिन मुझे विश्वास है कि जिन कृतियों का चयन मैंने किया है वे इस अध्ययन के लिए उपयुक्त हैं । जिन उपन्यासों में कलाकार का आत्मसंघर्ष का प्रस्फुरण है उन्हीं उपन्यासों को अध्ययन के अन्तर्गत रखा गया है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध पूरा करने में जिनका सहयोग प्राप्त हुआ उनमें सर्वप्रथम मेरे शोध निर्देशक आदरणीय प्रो. के. मुहम्मद जी का है । उन्होंने समय समय पर अपने अमूल्य सुझाव देकर मेरा मार्ग दर्शन किया । इस शोध उनके कुशल निर्देशन में सुगठित व सुव्यवस्थित हो सका है । मैं उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ ।

शोध-प्रबन्ध को पूरा करने में प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप में मुझे प्रोत्साहित गुरुजनों, सहयोगियों, मित्रों एवं पुस्तकालय कर्मचारियों के प्रति मैं आभार व्यक्त करती हूँ । उन समस्त रचनाकारों तथा समीक्षकों के प्रति भी आभार प्रकट करना अपना कर्तव्य समझती हूँ जिनकी रचना सामग्री का मैंने उपयोग किया है ।

अपने परिवार के सभी सदस्यों का भी आभार मानती हूँ विशेष रूप से अपने पति श्री रषीद की अनुगृहीत हूँ, जिनकी निरन्तर सत्प्रेरणा तथा उत्साहवर्धन के कारण यह शोध पूर्ण हो सका है, साथ ही साथ मेरे और उनके माता-पिता और मेरी प्रिय बेटियों के सहयोग के बिना यह कार्य असंभव रहता ।

इस शोध प्रबन्ध को विद्वानों के समक्ष विनम्रतापूर्वक प्रस्तुत करती हूँ ।

धन्या. पी.एस.

अध्याय – १

कलाकार का आत्मसंघर्ष - स्वरूप विवेचन

१ कला का स्वरूप विवेचन

कला एक मानवीय गुण है । आदि काल से ही कला का अस्तित्व मानव के प्रत्येक क्रिया-कलापों में विद्यमान रहा है । प्रकृति तथा समाज से प्राप्त संवेदना एवं सौन्दर्य-बोध को मानव द्वारा वाणी, गति एवं क्रिया में मूर्त करने के जितने प्रभावपूर्ण प्रयत्न होते आ रहे है, उन सबका अन्तर्भाव कला में किया जाता है ।

मानव मन पर समाज का प्रभाव पड़ता रहा है, जिससे उसकी अन्तःवृत्तियाँ स्पंदित होती रही है । इन स्पंदनों को वह अपनी चेष्टाओं तथा शब्दोच्चारण द्वारा मूर्त करता रहा है । इस क्रिया को अभिव्यंजना कहते हैं । यों तो प्रत्येक व्यक्ति अपने समाज से संस्कार अर्जित करता है, किन्तु कुछ मनुष्य औरों की अपेक्षा अधिक संवेदनशील, प्रभाविष्णु और संस्कारशील होते हैं और साथ ही अपने मन पर पड़े प्रभावों के प्रकाशन या संवेदन की अधिक क्षमता भी रखते हैं । ऐसे ही संवेदनशील और सक्षम व्यक्तियों की अभिव्यंजना कला की कोटी में आती है ।

जीवन में सर्वश्रेष्ठ को प्राप्त करने और उसका उपयोग करने की प्रवृत्ति मानव मात्र के स्वभाव के मूल में विद्यमान है । हम सभी ऐसी परिस्थितियों में उत्पन्न नहीं होते कि जीवन के आरंभ से अंत तक यह परिस्थितियाँ हमें सुख ही सुख प्रदान करने का आश्वासन दे सकें । प्रायः जीवन में अपने को अभावों तथा विषम परिस्थितियों से घिरा हुआ पाते है । मानव इन असुन्दर परिस्थितियों को अपने मानसिक जगत् की कल्पना से पुनःसृजन करने का प्रयत्न

करता है, सृष्टि को सुन्दर रूपों में देखना चाहता है और सुन्दरतम की खोज में अपनी संभावनाओं व क्षमताओं को मूर्त रूप देते है । ऐसे ब्रह्मा की रचनाओं का पुनःसृजन को भी कला कहते है ।

कला क्या है और कला शब्द का अर्थ क्या है ? इसको जानना ज़रूरी है ।

१.१ कला शब्द की उत्पत्ति एवं अर्थ

भारतीय भाषाओं में प्राचीन काल से कला शब्द का प्रयोग प्रचलित है । "कला शब्द की रचना कल्+अच्+टाप् धातु एवं प्रत्ययों के संयोग से हुई है । कला का शाब्दिक अर्थ है – किसी वस्तु का छोटा अंश, चन्द्रमण्डल का षोडश अंश, राशी के तीसवें भाग का साठवाँ अंश ।"[1]

मोनियर विलियम्स का प्रसिद्ध संस्कृत कोष में कला शब्द की व्युत्पत्ति 'संदिग्ध' बताई गई थी । कला शब्द 'कल' धातु से ही व्युत्पन्न है । इसका मूल धातुगत अर्थ 'गणना करना' अथवा 'रचना करना' है । 'काव्यशास्त्र के मानदण्ड' में डॉ. रामनिवास गुप्त के अनुसार 'कलयदि इति कला' अर्थात् जो जगत् का सृजन करती है, निर्माण करती है वह कला है । डॉ. रामदत्त भरद्वाज ने कला शब्द की व्युत्पत्ति 'कवि' और 'लास्य' इन दोनों शब्दों के प्रथमाक्षरों से मानते है । कवि का लास्य ही कला है । लास्य शब्द का कोशार्थ है – नृत्य अथवा उछलकूद।

कुछ विद्वान इसे 'क' से संबंधित मानकर इसका अर्थ आनंद के रूप में भी लेते है । क + ला - क = कामदेव, सौन्दर्य प्रसन्नता, हर्ष ला = देना । 'क लाति ददातीति कला', अर्थात् सौन्दर्य की अभिव्यक्ति द्वारा सुख प्रदान करने वाला वस्तु का नाम कला है ।

'कला एवं तकनीक में डॉ. अविनाश बहादुर वर्मा कहते है कि कुछ विद्वान कला की उत्पत्ति कर्ड् धातु से मानते हैं, जिसका अर्थ है –प्रसन्न करना, मस्त करना इत्यादि ।

वेदों में ऋग्वेद सबसे प्राचीन है । कला शब्द का प्रयोग उसमें भी प्राप्त होता है । शतपथ ब्राह्मण, पडिवंश ब्राह्मण, संख्यायन ब्राह्मण तेतिरीय आरण्यक और अथर्ववेद में इस शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है ।

क्षेमराज ने शिवसूत्र विमर्शिणी में कला को वस्तु के रूप संवारने वाली प्रतिभा या अभिव्यक्ति कहा है – कलयति स्वरूप आवेशयति वस्तूनि वा अर्थात् कला वस्तु के स्वरूप को सुशोभित या अलंकृत करती है । शैव दर्शन में कला परमशिव की सृष्टि क्रिया के प्रति प्राथमिक सचेष्टता को कहते है । इस प्रकार शैव विचारधारा में कला का दार्शनिक अर्थ को प्रयोग किया है । जिसके अनुसार कला का लक्ष्य आत्मा के स्वरूप का साक्षात्कार तथा परम तत्व (Absolute) की ओर उन्मुख होना है ।

वाक्पदीय में कला यानी संपूर्ण जीवन न होकर जीवनांश है शायद इस अर्थ में कला शब्द का प्रयोग किया गया होगा । जिसे हम आज कला कहते हैं, उनमें जीवन के कुछ अंग ही प्रतिबिंबित हुए दिखाई देते हैं । शायद इसलिए जीवन के अंगों के इस पुनर्दर्शन का 'कला' यह नामाभिधान हुआ होगा । कला इस शब्द का अर्थ ज्ञान और ध्वनि ऐसी हैं ।

भरतमुनि के भरतनाट्य शास्त्र में कला को साहित्य, ज्ञान विद्या आदि से भिन्न स्वीकार किया गया है । 'न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला ।' इस पंक्ति की व्याख्या करते हुए कला को गीत वाद्यादिका लिखा है । प्रो. रणवीर सक्सेना ने 'कला और कलाकार' नामक ग्रंथ में भारतीय शास्त्रों को आधार बनाकर कला का अर्थ व्यक्त किया है -

'एकमेव दिव्यं कला' इसका मतलब यह है कि एक-मात्र अद्वितीय सत्य कला है ।

कला का संपूर्ण परिचय प्राप्त करने के लिए हमें पाश्चात्यों की राय को भी छान-बीन करना चाहिए । अंग्रेज़ी में तेरहवीं शती से कला शब्द का मूर्ति, चित्र, काव्य और संगीत के रूप में स्वीकार किया गया है । अंग्रेज़ी भाषा में कला के लिए 'आर्ट' (Art) शब्द का प्रयोग किया गया है । "आर्ट शब्द 'आर' (Ar) धातु से उत्पन्न है । लैटिन भाषा के 'आर्स' और 'आर्टम' से आर्ट शब्द का आविर्भाव हुआ है । जिसका अर्थ 'बनाना', 'उत्पन्न करना' या 'फिट करना' आदि है । लैटिन शब्द आर्स (Ars) का ग्रीक रूपान्तर 'TEXVEN' (तैक्ने) है । इसका प्राचीन अर्थ शिल्प (CRAFT) अथवा 'नैपुण्य-विशेष' है । प्राचीन भारत में भी कला को शिल्प और कलाकार को शिल्पी शब्द का प्रयोग करते थे ।"[2]

आरंभ में आर्ट शब्द का प्रयोग केवल कौशल (Technique) के लिए उपयुक्त करते थे । शारीरिक या मानसिक कौशल से जब किसी कार्य में कृत्रिम निर्माण किया जाय तो वह कला माना जाता था । परन्तु कला में ज़रूर किसी 'करनी' या 'रचना' की प्रधानता होती है । धीरे-धीरे इस शब्द की व्याख्या विस्तृत रूप से की जाने लगी और इसकी परिधि के अंतर्गत वास्तु, मूर्ति, चित्र, काव्य, संगीत, नृत्य तथा भाषण का भी विवेचन किया जाने लगा ।

आधुनिक कला में इन सभी शब्दों की सूक्ष्म व्याख्या की गई है और अब कला (Art), शिल्प (Craft) तथा कौशल (Technique) का अलग-अलग अर्थों में प्रयोग किये जाने लगे । कला शब्द का अर्थ व्यापक है । कला शब्द मानव के हर कार्य का पर्यायवाची है । मानव जीवन के जितने कार्य-कलाप, क्रियायें अथवा चेष्टाएँ हैं वे सभी कला के अंतर्गत आते हैं । किन्तु इसका सबसे अधिक व्यावहारिक अर्थ - किसी भी कार्य को पूर्ण कुशलता या निपुणता से संपन्न करना ही है ।

१.२ कला की परिभाषाएँ

कला एक मानवीय गुण है । आदि काल से ही कला का अस्तित्व मानव के प्रत्येक क्रिया-कलापों में विद्यमान है । कला सामान्यतया भावुक की सृष्टि मानते है । संसार में हर व्यक्ति जीवन को समझने का यत्न करता है । उनमें वैज्ञानिक, कलाकार और कर्मयोगी की प्राप्तियाँ महत्वपूर्ण होती है । लेकिन वैज्ञानिक और कर्मयोगी के लिए पूर्णता दूर ही रहती है । उनका अभीष्ट मूर्त रूप अपनाने के बाद भी अधूरा ही रह जाता है । इसका कारण यह है कि यथार्थ तो अत्यंत दरिद्र है, इन युगों में अनेक व्यक्तियों के प्रयत्न के बाद भी मनुष्य के दोनों पार्श्व संसार में अधूरे है, न वह पूरा देवता हो पाया है, न पूरा दानव । कलाकार की सृष्टि के हर क्षेत्र में हम अपना प्रतिबिम्ब पाते हैं । यह क्षमता कला के अवास्तव संसार को भी वास्तव बना देती है । लोग अपने व्यक्तिगत जीवन के आधार पर ज़िन्दगी को समझ लेने का गर्व करते है और इसके लिए यत्नशील वैज्ञानिक और कर्मयोगी ज़िन्दगी के बाह्य भाग हमको दिखाता है पर उसका अंतर भाग सदैव पहेली सी अनुभूतियों और विचारों का जटिल संसार है । कलाकार इन अनुभूतियों और विचारों को रंग भरकर हमारे सामने व्यक्त करते हैं । ऐसे मनुष्य जिन वस्तुओं का निर्माण या रचना करता है वही कला कहलाती है ।

भिन्न-भिन्न कालों में तथा भिन्न-भिन्न स्थानों में अनेक विद्धानों ने कला की परिभाषाएँ अपने युग की मान्यताओं और आवश्यकताओं के साथ प्रस्तुत की है ।

१.२.१ भारतीय मनीषियों की राय

भारतीय मनीषियों के दार्शनिक विचारों के आधार पर कला को ईश्वर की कृति की अनुकृति माना गया है । भारतीय कला धर्म पर आधारित है । हमारे पौराणिक वेद ऋग्वेद

से ही कला की परिभाषा मिलती है । इसके अलावा शतपथ ब्राह्मण, षडिवंश ब्राह्मण, संख्यायन ब्राह्मण, तेत्तिरीय आरण्यक और अथर्ववेद में इस शब्द का प्रयोग होता है । भरत के नाट्यशास्त्र में कला का प्रथम प्रयोग प्राप्त होता है । इसकी रचना प्रथम सदी के आसपास की है । पहले शिल्प शब्द का प्रयोग था ।

"अभिनव गुप्त ने 'कला गीत वाध्यादिका' अर्थात् कला गीत, वाध्य और नृत्य का वाचक है इस प्रकारकला के संबंध में विचार व्यक्त किए है ।"[3]

कालिदास के 'अजविलाप' में 'गृहिणी सचिवः सख्री मिथः प्रिय शिष्या ललिते कलाविधौ ।' इस पंक्ति में ललित कला यह शब्द का प्रयोग पाया जाता है । भर्तृहरि 'साहित्य संगीत कला विहीनः । साक्षात् पशु पुच्छविषाण हीनः ।' इस तरह साहित्य, संगीत आदि कला की प्रशंसा करते हैं ।

श्री भामह ने 'नृत्यं गीतं तथा वाध्यं आलेख्यं मणिभूमिका कारिकाओं से' और वामन ने 'कलाशास्त्रेभ्यः (१.३.७) का लं.सूवृ' इस सूत्र पर लिखी वृत्ति में गीत, नृत्य, चित्र आदि से कलाओं से अभिप्राय प्रकट किए हैं ।

लेकिन इनमें से कला की कोई व्यक्त परिभाषा हमें नहीं मिलती हैं । इसका प्रमुख कारण यह होगा कि प्राचीन भारत में काव्य और कला को भिन्न माना है । इसमें काव्य को ब्रह्मानन्द सहोदर और कला को लौकिक आनन्द के साधन मानते थे । इसलिए भारतीय मनीषियों ने काव्य को प्रथम और कला को दूसरा स्थान दिया था। वही कारण से पाश्चात्यों से तुलना करते समय कला के भारतीय प्राचीन परिभाषाएँ सुव्यक्त नहीं है ।

ऋग्वेद की ऋचा में 'हिरण्यगर्भः समर्वततात्रे' कहा है । इस बात का मतलब

यह है कि समस्त सत्य शिव और सुन्दर परमात्मा से ही उद्‌भूत है । सौन्दर्य की शक्ति महान है और कला भी इसका अपवाद नहीं है । कला अनन्त है और सौन्दर्य भी अनन्त है । परमात्मा के सौन्दर्य की विज्ञाप्त चेतना कला कहलाती है ।

"भारतीय वेदान्त-दर्शन में ब्रह्म को सर्वश्रेष्ठ और प्राचीन कलाकार माना गया है । विश्व उसकी कविता या रचना है जो छन्दों, पद्यों, लयों तथा आनन्द के नाना रूपों में प्रतिस्फुटित होती है ।"[4]

क्षेमराज ने 'शिवसूत्र विमर्शिणी' में कला को वस्तु का रूप संवारने वाली प्रतिभा या अभिव्यक्ति कहा है । 'कलयति स्वरूपं आवेश्यति वस्तूनी वा' अर्थात् कला वस्तु के स्वरूप को सुशोभित या अलंकृत करती है । ब्रह्मसूत्र में 'अरुपदेव हित सधानत्वात्' । परमेश्वर का साकार और निराकार रूप जिस रूप में भी अभिव्यक्त हुआ है उसकी अनुकृति ही 'कला' है । जो अभिव्यंजना आन्तरिक भावों का प्रकाशन करती है वही 'कला' है । ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है 'कला देवलोक की कृतियों की अनुकृति है'।

भारतीय कला की अपनी कुछ मौलिक विशेषताएँ है । उसकी प्रधानभूत विशेषता भावाभिव्यं-जन की है । दूसरी विशेषता उसकी आध्यात्मिकता है । भारत में कला का विकास कला के लिए न होकर आत्मस्वरूप का साक्षात्कार या उसे परमतत्व की ओर उन्मुख करने के लिए हुआ है ।

सामान्यतया प्राचीन भारतीय कला को केवल चमत्कारपूर्ण कौशल समझा गया था । काव्य को अन्य कलाओं से अलग स्थान दिया गया था । कला को उपविद्या की कोटि में रखकर उसमें चोरी, द.यूतक्रीडा जैसी विगर्हणीय और संगीत नृत्य जैसी उन्नत कलाएँ भी जोड

दी थी । प्राचीन भारतीयों के समान प्रसाद जी और पंडित रामचंद्र शुक्ल भी काव्य को कलाओं के अंतर्गत नहीं मानते थे । किन्तु पश्चिमी दृष्टिकोण से अधिकाधिक संपर्क स्थापित होने के कारण भारतीय दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आया और अब काव्य को भी कला के अंतर्गत स्वीकार करने में किसी को आपत्ती नहीं ।

श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर ने 'Personality' नामक पुस्तक में 'What is Art' शीर्षक लेख में ज्ञान के दो पक्ष कला और विज्ञान स्वीकार करते हुए, इनका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है – "In Art man reveals himself and not his object. His objects have their place in books of information and science." अर्थात् कला मनुष्य की बाह्य वस्तुओं की अपेक्षा स्वानुभूति की अभिव्यक्ति है । वस्तुतः रवीन्द्र जी के मत में कला का प्रधान लक्ष्य व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति करना है । रवीन्द्रनाथ टैगोर के शब्दों में जो सत् है, जो सुन्दर है, वही कला है ।

डॉ. भोलानाथ तिवारी सम्मेलन पत्रिका के कला अंक (पृ.२४) में तिवारी जी के अनुसार – कला में मनुष्य अपनी अभिव्यक्ति करता है । इसी तरह मैथिलीशरण गुप्त भी – 'कला अभिव्यक्ति की कुशल शक्ति' मानते है । जयशंकर प्रसाद जी ने अपनी रचना 'काव्य और कला' (पृ.२४) में ईश्वर की कर्तव्य-शक्ति का संकुचित रूप जो हमको भाव बोध के लिए मिलता है उसको ही कला माना है ।

डॉ. श्यामसुन्दर दास के अनुसार – "जिस अभिव्यंजना में आंतरिक भावों का प्रकाशन और कल्पना का योग रहता है, वही कला है ।" असित कुमार हालदार कहते हैं – "कला मानव का सात्विक गुण है । एक सरल भाषा है, जो मानव जीवन के सत्यों को सौन्दर्यात्मक एवं कल्याणकारी रूप में प्रस्तुत करती है ।"[5] डॉ. जैनेन्द्र कुमार अनुभूति की

अभिव्यक्ति को कला मानते हैं । आचार्य शुक्ल के अनुसार – "एक की अनुभूति को दूसरे तक पहूँचा देने वाले रहस्य को कला मानते हैं ।"

विभिन्न भारतीय विद्धानों की कला संबन्धी परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि संस्कृत के आचार्यों ने कला को कितना संकुचित और काव्य को कितना बृहत स्थान दिया हो उससे दूर रहकर भारतीय हिन्दी रचनाकारों के दृष्टिकोण बहुत ही भिन्न है उसमें प्राचीन भारत के अध्यात्मिक और पाश्चात्यों के तथ्यपरक दृष्टिकोण हम देख्र सकते हैं ।

१.२.२ पाश्चात्य मनीषियों की राय

पाश्चात्य विद्धानों ने भी कला को अनेक प्रकार से परिभाषित किया है । यूनानी दार्शनिक प्लेटो ने सर्वप्रथम कला की परिभाषा निम्न रूप में प्रस्तुत की –

कला सत्य की अनुकृति है । प्लेटो ने सत्य को सार्वभौमिक तथ्य माना है, जिस सत्य की अनुकृति हमें संसार के जड़ एवं चेतन सभी रूपों में दिख्राई पड़ती है । प्रकृति में देख्री वस्तुओं की आकृति कलाकार के मानस-पटल पर पड़ती है, इसी की अनुकृति वह अपनी कलाकृतियों में करता है । प्लेटो ने कला को पुनःउपस्थिति (पुनःप्रस्तुति) या अनुकृति कहा । इसका अर्थ यह था कि प्रकृति की किसी वस्तु को देख्रकर अपनी कलात्मक प्रतिभा एवं रुचि के द्धारा पुनः उसे उसी रूप में रच देना ही कला है । प्लेटो के अनुसार कला सत्य की अनुकृति की अनुकृति है ।

प्लेटो के शिष्य अरस्तू ने कला की परिभाषा एक नवीन रूप में प्रस्तुत की और उसने कला अनुकरणीय कहा है । कलाकार रंगों से, औजारों से, शब्दों से प्रकृति को रूपायित करता है । मनुष्य कल्पनाशील प्राणी है । वह प्रकृति के प्रत्यक्ष सौन्दर्य से तृप्त नहीं होता उसमें

कुछ अभाव महसूस करता है । इस अभाव की पूर्ति कला के माध्यम से होती है । अतः कला केवल अनुकण नहीं, प्रकृति की पुनः कृति है । इसीलिए अरस्तू कहते हैं – "अशक्य सम्भाव्य (improbable possibility) से घटित हो सकने वाला असम्भाव्य (probable impossibility) कहीं अधिक उत्कृष्ट और संग्राह्य है ।"

अरस्तू की अपूर्ण परिभाषा को हीगेल ने पूर्ण किया । उनके अनुसार "सृष्टि के उच्च से उच्चतर चेतना संपन्न प्राणियों में सौन्दर्य-बोध क गुण भी उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है । मानव अपने चारों ओर सृष्टि में जो सौन्दर्य पाता है, वह उससे भी उत्कृष्ट सौन्दर्य कल्पना के सहारे निर्मित करता है और इस प्रकार कला प्रकृति से श्रेष्ठ है ।" हीगेल ने कला की परिभाषा करते हुए कहा कि "कला आदि भौतिक सत्ता को व्यक्त करने का माध्यम है ।"

प्लेटो, अरस्तु तथा टॉलस्टॉय ने कला को पुनः प्रस्तुति या अनुकृति कहा है । इसके साथ टॉलस्टॉय का कहना है कि "कला एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके द्वारा एक मनुष्य अपनी अनुभूतियों को साभिषाय रूप से दूसरों के प्रति प्रेषित करता है ।" कला का यह अवश्यक गुण है कि उसके द्वारा कलाकार अपनी अनुभूति में दूसरे को तन्मय कर लेता है, उसके माध्यम से दूसरों के मन में भी वैसा ही भाव जागृत कर देता है । टॉलस्टॉय के अनुसार "यदि अपने भावों को क्रिया, वर्ण, रेखा, ध्वनि अथवा शब्द द्वारा इस प्रकार से अभिव्यक्त किया जाए कि उसके दर्शन से अथवा श्रवण के द्वारा कलाकार के मन में भाव जागृत हो जायें तो उसको कला के नाम से सम्बोधित किया जायेगा ।" टॉलस्टॉय ने कला की परिभाषा करते हुए कहा कि "कला की महत्ता का ज्ञान भावों की सफल अभिव्यक्ति और कलाकार के मन पर पड़े हुए प्रभावों का सफलता पूर्वक संप्रेषण है ।"[7]

फ्रायड के अनुसार, "कला मानव के अवचेतन मन की प्रवृत्तियों का उन्नत रूप

है । इसके द्वारा कलाकार के मन की दबी हुई वासनाओं का उन्नयन होता है ।" फ्रायड कहते हैं – "दमित वासनाओं का उन्नयन होता है । हमारे नित्य जीवन में बहुत-सी आकाँक्षाएँ विशेषतः यौन आकांक्षाएँ, समाज के अनेक विधि-निषेधों के कारण तृप्त नहीं हो पाती । ये अतृप्त वासनाएँ अवचेतन मन में संग्रहीत हो जाती है । साधारण मनुष्य अवचेतन मन की छिपी हुई प्रवृत्तियों के दमित रहने के कारण अप्रकृतिस्य बन जाता है, किंतु कलाकार में अपनी वासनाओं के उन्नयन की असीम क्षमता रहती है । अपनी इस क्षमता के द्वारा वह अपनी वासनाओं को छद्म रूप में - कला के आवरण में - प्रकट करता है ।" जिस गर्हित समझी जानेवाली वासना को वह नित्य जीवन में चरितार्थ नहीं कर सकता, उसे वह कला के द्वारा चरितार्थ कर यश का भागी बनता है । अतः कला अवचेतन मन की अतृप्त वासनाओं का समुन्नत रूप है । यह दृष्टिकोण कुछ कलाकृतियों की मूल प्रेरणाओं की व्याख्या कर लेता है; किन्तु यह संसार की सभी कलाकृतियों की जिनमें उदात्त भावनाएँ और प्रेरणाएँ निहित हैं – व्याख्या करने में असमर्थ है। फ्रायड कला के बारे में कहते है "दमित वासनाओं का उभरा हुआ रूप ही कला है ।"

महान इतालियन दार्शनिक वेनीदीनो क्रोचे ने एक स्थान पर "Art is what every body know it is ." कहता है । इसका मतलब यह है कि कला और उसके प्रभाव को न जाननेवाले नहीं होगे । क्रोचे ने कलाकृति से प्राप्त होने वाली अनुभूति और प्रकृति की अनुभूति में अंतर माना है और आज के अधिकतर आधुनाबादी विचारक तथा कलाकार भी यही मानते हैं । क्रोचे ने कला को अभिव्यंजना माना है । यह अभिव्यंजना प्रतिभा ज्ञान का व्यापार है । क्रोचे के शब्दों में "Every true institution is also expression." कलाकार का ज्ञान ही अभिव्यंजना में मूर्त हो जाता है । अभिव्यंजना में जो सौन्दर्य उभर आते है वह सौन्दर्य वस्तु में नहीं होता । क्रोचे कला को ज्ञानपरक अभिव्यंजना ही मानते है ।

कार्ल-मार्क्स की कला-संबंधी धारणा यथार्थवादी है । उनकी मूल धारणा यह है कि मनुष्य का जीवन उसकी अपनी चेतना पर अवलंबित नहीं, बल्कि उसकी चेतना ही उसके सामाजिक जीवन पर आधारित रहती है । अतः कलाकार की चेतना सामाजिक स्थिति की ही देन है । सामाजिक जीवन की भित्ति समाज की आर्थिक व्यवस्था है, इसलिए कला मुख्यतः समाज की आर्थिक स्थिति से ही प्रेरणा पाती है । मार्क्स कलाकार की निजी भावना और कल्पना-शक्ति को आनुषंगिक मानते हैं । मार्क्स ने भाववादियों के ऊहापोह को ठुकराकर कला को जीवन के आलोक में देखने की स्वस्थ दृष्टि दी । किन्तु, यह मत भी अधूरा ही है, क्योंकि यह कला में अभिव्यक्ति की प्रक्रिया या कला-पक्ष की मीमांसा में प्रवृत्त नहीं होता ।

पाश्चात्य विद्वान सोफेनहावर (Scuphenhor) के शब्दों में – "All art of divine are essentially chaste." इसका मतलब यह है कि सृष्टि को दिव्य रचना मानकर कला को पवित्र की अभिव्यक्ति माना है । पाश्चात्य कवि शैले के शब्दों में कला कल्पना की अभिव्यक्ति है । प्रसिद्ध इतालियन मूर्तीकार एवं चित्रकार मईकल एन्जलो के अनुसार "The works of art are but a shadow of divine reflection." अर्थात् कला के महान कृत्यों को दिव्य झलक की छाया कहा है । विख्यात् फ्रेंच समालोचक फागुए के अनुसार, "कला भावों की उस अभिव्यक्ति को कहते है, जो तीव्रता से मानव हृदय को स्पर्श कर सके ।"

रस्किन के अनुसार - "हर एक महान कला ईश्वरीय कृति के प्रति मानव-आह्लाद की अभिव्यक्ति है ।" All great art is the expression of man's great delight in God's work and not his own. प्रसिद्ध समालोचक हर्बर्ट रीड कहते हैं – "एक साधारण सा शब्द कला साधारणतया उन कलाओं से जुड़ा होता है, जिन्हें हम 'रुपप्रद' या दृश्य कलाओं के रूप में जानते हैं ।"[8] आर.जी. कलिंगवुड ने अपनी पुस्तक 'कला के सिद्धांत' में लिखा है -

- "कला एक व्यक्ति की रचनात्मक इच्छा की सुन्दर अभिव्यक्ति है । यह कल्पना की रचनात्मक प्रक्रिया के द्वारा हमें प्राप्त होती है ।"

पाश्चात्य विद्वानों के कला संबंधी विचारों को देखते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारतीय मनीषियों के समान ब्रह्म की अनुकृति को ही कला कहते है जो कल्पनारत मानव की दमित वासनाओं की अभिव्यक्ति ही मानते है ।

१.३ कलाओं का वर्गीकरण एवं परिचय

पाश्चात्य विद्वानों ने कला को उपयोगी और ललित दो भागों में विभाजित किया है । परन्तु प्राचीन भारत में कला को चौंसठ प्रकार की कला में विभाजित किया है ।

भारत सदा से अनेक कलाओं का घर रहा है । ये कलाएँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में बिखरी पड़ी है । घरों, मन्दिरों, प्रासादों, वेश भूषाओं, आलंकरणों और दैनिक-प्रयोग की अनेक चीज़ों में भारतीय कला के दर्शन होते हैं । सार्वजनिक समारोहों, उत्सवों, विवाहोत्सवों तथा धार्मिक पर्वों पर ये कलाएँ अपने वास्तविक रूप में प्रकट होती हैं । इन कलाओं का अत्यंत मनोहर रूप विवाह-मंडपों की सजावट, स्त्रियों की आकर्षक वेश-भूषा, उनके हाथों की कलात्मक महावर, वेणियों की आकर्षक गुँथाई तथा उनके कोकिल कंठों की मधुर-स्वर लहरियों में परिलक्षित होता है । यह तो हमारी कला का दैनिक और सार्वजनिक रूप है, जो अभी भी भारत के कला पक्ष की विविधता को प्रकट करता है ।

१.३.१ प्राचीन विचारधाराएँ

प्राचीन काल में इन सबको जोड़कर कलाओं की संख्या चौसंठ मानी जाती थी । उस काल में कला से जो अभिप्राय ग्रहण करता था वह भिन्न था । चौसंठ कला का संदर्भ

कामशास्त्र का है, इस संदर्भ में प्रयोजनीय वे सभी विध्याएँ, सभी कौशल और उपाय कला के अंतर्गत माने जाते थे ।

'कामसूत्र' में वर्णित चौसंठ में से चौबीस कर्माश्रयी कलाएँ थी, जिनमें आज की अधिकतर कलाएँ और शिल्प शामिल थे । साथ ही 'द्यूताश्रयी' कलाएँ भी थीं, जो दाँव खेलने के काम आती थी, और साथ ही कुछ ऐसी कलाएँ थी जिनका सीधा संबंध रतिव्यापार से था । जब ये विभिन्न प्रकार की विध्याएँ, कौशल और पटुताएँ एक साथ कला के अंतर्गत गिनायी गई तब उन सभी को संस्कारवान व्यक्ति की सुखमय जीवचर्या का साधन माना गया और काम को एक पुरुषार्थ के रूप में स्वीकार किया गया । समय मनोरंजन केवल फुरसत का समय काटने का साधन मात्र नहीं था । वह स्वास्थ्य पाने या बनाये रखने का एक साधन माना गया था । आज हम जिन कर्मों को दुर्व्यसन समझते हैं उनके बारे में उस समय की धारणा बिलकुल दूसरी थी । धारणाओं का बदलना सभ्यता के विकास का एक अंग है ।

भारतीय साहित्य में चौसंठ कलाओं का उल्लेख मिलता है । वात्स्यायन के 'कामसूत्र' में वर्णित चौंसठ कलाएँ – 1. गीतम, 2.वाध्यम, 3.नृत्यम्, 4.आलेख्यम (चित्र लेखन), 5. विशेषकच्छेध्यम (कटाव करके चित्र आदि बनाना), 6. तण्डुल कुसुमबलिविकाराः (पूजा केलिए अक्षत रंग-बिरंगे फूलों का सजाना), 7. पुष्पास्तरणम् (घर या कमरे को फूलों से सजाना), 8. दशनवसना - ङ राग (शरीर, कपडे और दाँतों पर रंग चढ़ाना), 9. मणिभूमिक कर्म (गच में मणि बैठाना), 10. शयन-रचनम् (शय्या की रचना), 11. उदक वाद्यम् (जल तरंग आदि जलवाध्य को बजाना), 12. उदक घातः (जल क्रीडा, पिचकारी आदि से मनोरंजन करना), 13. चित्राच्चयोगाः (विचित्र औषधियों का प्रयोग जानना), 14. माल्यग्रन्यनम् (विभिन्न प्रकार से फूल गूँथना), 15. शेखरकापीडयोजनम् (शेखरक और अपीडक, सिर पर पहने जाने वाले दो

माल्य अलंकारों का उचित स्थान पर धारण करना), 16. नेपथ्यप्रयोगाः (देशकाल के अनुसार तरह-तरह के वस्त्रों से सजाना), 17. कर्णपत्रभङ्ग (दाँत, शंख आदि से कान के गहने बनाना), 18. गन्धयुक्ति (सुगन्ध लगाने की विधियाँ), 19. भूषणयोजन (आभूषणों का यथायोग्य पहनाना) 20. ऐन्द्रजालायोग (जादू करना), 21. कौचुम्बमारयोग (शरीरावयवों को मज़बूत और विलासयोग्य बनाने की कला), 22. हस्तलाघवम् (हाथ की सफाई), 23. विचित्र शाकषूयभक्ष्यविकार क्रिया (साग-भाजी बनाने का कौशल), 24. पानकरसरागासवयोजनम् (भिन्न प्रकार का पेय शर्बत, मध्य वगैरह तैयार करना), 25. सूचीवानकर्मणि (सीना, पिरोना, जाली बनाना इत्यादि), 26. सूत्र क्रीडा (घर, मन्दिर आदि विशेष आकृतियाँ सूत से बना लेना), 27. वीणाडमरूक वाद्यानि (वीणा, डमरू तथा अन्य बाजे बजाना), 28. प्रहेलिका (पहेलियाँ बुझाना), 29. प्रतिमाला (अंत्याक्षरी), 30. दुर्याचकयोगा (कठिन शब्दों को बोलना, समझना और रचना करना), 31. पुस्तकवाचनम (सस्वर काव्य वाचन), 32. नाटकाख्यायिका दर्शनम् (नाटक, कहानियों का ज्ञान), 33. काव्यसमस्या पूरणम (समस्यापूर्ति), 34. पट्टिकावेत्रवानविकल्पा (बैंत और बाँस से नाना प्रकार की वस्तुओं की बुनाई), 35. तक्षकर्मणी (सोने-चाँदी के गहनों और बर्तनों पर काम करना), 36. तक्षणम (बढ़ईगिरी), 37. वास्तुविध्या (घर निर्माण कला), 38. रूप्य रत्नपरीक्षा (मणियों और रत्नों की परीक्षा), 39. धातुवाद (धातुओं को मिलाना, शेथना), 40. मणि रागाकारज्ञानम (रत्नों का रंगना और उनकी खनियों का जानना), 41. वृक्षायुर्वेदयोगाः (वृक्षों की चिकित्सा इच्छानुसार बड़ा-छोटा बना लेने की विध्या), 42. मेष कुक्कुटलावक-युद्धविधि (मेढ़ा, मुर्गा और लावकों को लड़ने की विधि), 43. शुकसारिका प्रलापनम् (तोता-मैना को सिखाने की विधि), 44. उत्सादने संवाहने केशमर्दने च कौशलम (शरीर और सिर मालिश की विधि), 45. अक्षर मुष्टिका कथनम् (सांकेतिक एवं संक्षिप्त अक्षरों में अर्थ समझाने की विधि), 46. म्लेच्छित विकल्पा (गुप्त भाषा विज्ञान), 47. देशभाषा विज्ञानम् (विभिन्न देश की भाषाओं

का ज्ञान), 48. पुष्पशकटिका (फूलों से गाडी, घोडा आदि का निर्माण), 49. निमित्तज्ञानम् (शकुनज्ञान), 50. यन्त्रमातृका (स्वयंवह यन्त्रों का बनाना), 51. धारण मातृका (स्मरण रखने का विज्ञान), 52. सपाठ्यम (किसी के पढे श्लोक के साथ पढ़ना), 53. मानसी (भिन्न प्रकार के श्लोकों को पढ़ देना), 54. काव्य क्रिया (काव्य बनाना), 55. अभिघान कोश छन्दो विज्ञानम् (कोश, छन्द आदि का ज्ञान), 56. क्रियाकल्प (रचना के गुण दोष का परीक्षण), 57.छलितकयोगाः (वेश, वाणी आदि के परिवर्तन से दूसरों को छलना बहुरूपीवन), 58. वस्त्रगोपनानि (छोटे कपडे को इस प्रकार पहनना कि वह बडा दीखे और बडा, छोटा दीखे), 59. द्यूतविशेषाः (जुआ), 60. आकर्ष क्रीडा (पासे से खेले गए जुए का खेल), 61. बाल क्रीडनकानि (गेंद, गुडिया आदि बच्चों के खेल), 62. बैनयिकीनां विद्यानां ज्ञानम् (विनय सिखानेवाली विद्या हाथी घोडों को सिखाने की विधियाँ), 63. वैजयिकीनां विद्यानां ज्ञानम् (विजय दिलाने वाली विद्याएँ), 64.व्यायामिकीनां विद्याना ज्ञानम् (व्यायाम विद्या) ।

इन चौंसठ कलाओं का उल्लेख कामसूत्र के अलावा शुक्रनीतिसार (कालिका-पुराण, कादम्बरी, दण्डीकृत काव्यशास्त्र और अग्निपुराण) में कुछ नामान्तर के साथ मिलता है । इसके अतिरिक्त प्रबन्ध कोश में बहत्तर कलाएँ है । उसमें गणितम, ज्योतिषं दर्शसंस्कारः तर्कवादः तपशिक्षा, वेदः पुराणम्, इतिहासं आदि को प्रत्येक नाम देकर कला का मान्यता देता है ।

कलाओं का उल्लेख सबसे अधिक संख्या में बौद्ध ग्रंथ ललित विस्तार में मिलता है । छियासी कलाओं के अंतर लङिघतम (कूदना), प्राक्चलितम् (उछलना), जवितम (दौडना), इब्वस्त्रम (अस्त्र चलाना), रथ (रथ संबन्धी बातें), स्थैर्यम (स्थिरता), स्थामं (बल), बाहुव्यायाम अपयानम् (पीछे की ओर से निकलना), शिखाबन्धः (शिखा बाँधना), स्फालनम्

(कन्दूक आदि को उछालने का कौशल), अग्निकर्म (आग पैदा करना), लास्यम (सुकुमार नृत्य), स्वप्नाध्यायः (सपनों का अर्थ लगाना), पुरषलक्षणम् (पुरुष का लक्षण जानना), शकुतिरुतम् (पक्षी की बोली समझना), गोलक्षणम् (गाय, बैल का लक्षण जानना), अजलक्षणम् (बकरा, बकरी का लक्षण), आश्वर्ययन हेतुविद्या (न्याय दर्शन), मघूच्छिष्टकृतम् (मोम का काम), पत्रच्छेद्यम (पत्तियों को काट-छाँटकर विभिन्न आकृतियाँ बनाना), बर्हस्पत्यम् (लोकायत मत) आदि को भी जोड़े है । लेकिन चौंसठ कलाएँ ही अधिक प्रसिद्ध है । कामसूत्र में वर्णित चौंसठ में से चौबीस कर्माश्रयी कलाएँ थीं, जिनमें आज की अधिकतर कलाएँ और शिल्प शामिल थे ।

संस्कृत साहित्य में कला के लिए 'शिल्प' शब्द का प्रयोग किया जाता था। शिल्प के अंतर्गत उपयोगी और ललित दोनों प्रकार की कलाएँ आ जाती थी ।

१.३.२ आधुनिक विचार धाराएँ

आधुनिक काल में इन शब्दों का विस्तृत विवेचन किया गया । आज शिल्प, कौशल, ललित कला, उपयोगी कला यह सब ही मानते हैं ।

१.३.२.१ शिल्प (Craft)

शिल्प शब्द के द्वारा प्रधानतः उनको संबोधित किया जाता है कि चमड़े, कपड़े, पाषाण, लकडी, धातु, हाथी, दाँत, हड्डी, मिट्टी आदि से बर्तन, वस्त्र, औजार जैसे जीवनोपयोगी वस्तुएँ बनाना । शिल्पों के निर्माण में अनुकरण को प्रमुख स्थान है । आदिकाल में इसके सैद्धान्तिक ज्ञान नहीं था किसी अन्य वस्तुओं के अनुकरण से नयी चीज़ें बनाते हैं । कुछ लोग अभी भी मूर्तिकला को इनके अंतर्गत मानते हैं । आधुनिक शिल्प (Craft) संस्थाएँ सैद्धान्तिक

एवं वैज्ञानिक स्तर पर शिक्षाएँ दी जाती है ।

१.३.२.२ कौशल (Technique)

कौशल और शिल्प की सीमा रेखाएँ बहुत फीकी हैं । इसका अंतर्गत मोटा या पतला कागज़ से पतंग, फूल, पत्ते और अन्य चीज़ों से खिलौने और मोडल बनाते हैं । कौशल से साधारण जीवनोपयोगी सामग्रियों को भी सुन्दर और आकर्षक बना जा सकता है । जो कार्य कुशलता के सहारे चतुराई से करते है उसे कौशल कहा जाता है ।

१.३.२.३ उपयोगीकला (Useful art)

कौशल और शिल्प दोनों इसका अंग है । उपयोगी कला का मतलब यह है कि भौतिक आवश्यकताओं के लिए ललित कला की सहायता से किसी कौशल या शिल्प को अधिक से अधिक उपयोगी बनाने की कला को उपयोगी कला कहते हैं । वास्तु, काष्ठकला, स्वर्णकारी लोहे की बर्तन जैसी उपयोगी चीज़ों के निर्माण आदि इसके अंतर्गत आते हैं ।

"महर्षि पाणिनी ने उपयोगिता और सौंदर्य के आधार पर कला को दो भागों में बाँटा है वे 'चारु' और 'कारु' है । इसमें चारु मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ती और अध्यात्मिक चेतना से संबंधित है । यह सौंदर्य बोध पर आधारित कलाओं के बोध दिलाता है । इसके अंतर्गत काव्य, संगीत, नृत्य, चित्र, मूर्ति आदि आते है । कारु उपयोगिता पर आधारित कलाएँ है । काष्ठकला, स्वर्णकारी, दत्तकारी आदि इसके अंतर्गत आते है ।"[9]

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में कलाओं का वर्गीकरण मुख्य और गौण किया है । आपकी मान्यता है कि नाट्यकला के संबंध में बाकी अन्य कलाएँ सब गौण है, क्योंकि नाट्यकला में अन्य कलाओं का उचित समावेश है ।

भारतीय परंपरा के आधार पर मोनियर विलियम्स ने अपने संस्कृत कोष में कला के भेद प्रस्तुत करते हुए उसे दो वर्गों में निम्न प्रकार से विभाजित किया गया है –

१. बाह्यकला (मूर्तकला) -- External Art

२. गोपनीय कला (अमूर्तकला) -- Secret Art

बाह्यकला में उन्होंने चित्रकला, वास्तुकला, बढ़ईगिरी, सुनारगिरी आदि को गिनाया है । गोपनीय कला में आलिंगन, चुम्बन आदि सम्मिलित हैं । यह विभाजन महत्वपूर्ण नहीं माना गया है ।

ज्ञान एवं शिक्षा की दृष्टि से कला के दो निम्न भेद है ।

१. व्यावसायिक कला

२. उदार कला

व्यावसायिक कलाओं में रंगाई छपाई बढ़ईगिरी सुनारगिरी आदि का प्रमुख स्थान है । उदार कलाओं में संगीत, व्याकरण, तर्क, भाषण आदि है ।

रूप अथवा आकार की दृष्टि से कला के निम्न भेद प्रस्तुत किए गए हैं ।

१. रूपात्मक या स्थल पर आधारित

२. गत्यात्मक या गति पर आधारित

रूपकात्मक में मूर्ति, चित्र तथा वास्तु कलाएँ आती हैं । इनका रूप नेत्रों से देखा जा सकता है, परन्तु गत्यात्मक या गति पर आधारित या निर्भर कला का दार्ष्टिक रूप नहीं दिया जा सकता है । उदाः संगीत और काव्य । संगीत और काव्य से आनन्द प्राप्त होते हैं ।

इन्द्रियों के आधार पर कला के निम्न भेद प्रस्तुत किए गए हैं – इनको इन्द्रिय-ललितकला के नाम दिए हैं ।

१. नेत्रों को आनन्द देनेवाली ललित कलाएँ
२. कानों को आनंद देने वाली ललित कलाएँ
३. नेत्रों तथा कानों दोनों को आनंद देनेवाली ललित कलाएँ

नेत्रों को आनंद देनेवाली ललित कलाओं के अंदर चित्र, मूर्ति, वास्तु आदि है जिन्हें दृश्य कला कहा जाता है । कानों के द्वारा आनन्द प्राप्त करने वाली ललित कलाओं के अंदर संगीत एवं काव्य है । इन्हें श्रवण या श्रव्य काव्य कहते हैं । जो कलाएँ जिनके रसास्वादन नेत्रों एवं कानों से प्राप्त सकते है उन्हें दृश्य-श्रव्य कलाएँ कहते है । अभिनय, नाटक तथा नृत्य इसके अंदर आ जाता है ।

मूर्तता की दृष्टि से कला का दो भागों में विभाजित किया गया है । वे हैं – १. मूर्तिकला, २. अमूर्तकला । रूप प्रधान अर्थात् चित्र, मूर्ति जैसी कलाओं को मूर्तिकला के अंदर स्थान दिया है । काव्य और संगीत से श्रोताओं को किसी मूर्त रूप का दर्शन नहीं होता है । ये कलाएँ श्रोताओं के अंतर मन को विभिन्न प्रकार से जगाती हैं । ऐसी कलाएँ अमूर्तकला के अंतर्गत आ जाती हैं ।

अनुकरण की दृष्टि से भी विचारकों ने कला के दो वर्ग प्रस्तुत किए है ।

१. अनुकरण पर आधारित
२. अनुकरण पर न आधारित

यह विभाजन आज कितना संगत है यह विचारणीय है । लेकिन विभाजन की दृष्टि से चित्रकला एवं मूर्तिकला को अनुकरण पर आधारित कलाओं के अंतर्गत लाते हैं । इनकी विकासशील अवस्था में अनुकरण की क्षमता कहाँ तक लाभ उठा सकती है वह केवल उनके शैली पर भी आधारित है ।

प्रयोजन के आधार पर मनोवैज्ञानिकों ने कलाओं को तीन भागों में प्रस्तुत किए हैं ।

१. अलंकरणात्मक
२. अनुकरणात्मक
३. आत्माभिव्यंजनात्मक

"अलंकरणात्मक कलाओं में श्रृंगार संबंधी कलाएँ आती है । वैज्ञानिकों के अनुसार पत्र रचना, भवनसज्जा आदि इनके अंतर्गत आती है । अनुकरणात्मक कलाओं में ऊपर के विभाजन के जैसे चित्र एवं मूर्तिकला को स्थान दिया है । अभिव्यंजनात्मक कलाओं में काव्यनृत्य, अभिनय, चित्र तथा संगीत कलाएँ आ जाती हैं । इन कलाओं में मनोभावों की अभिव्यक्ति होती है । मूर्तिकला में किसी वस्तु की नकल से मात्र आज कार्य सिद्धि नहीं होती है । इसलिए इसको भी अभिव्यक्ति के अंतर्गत मानने को ज़िद्ध करना ही पडेगा ।"[10]

डॉ. श्यामसुन्दर दास ने कलाओं के विभाजन कला के दो पक्षों को आधार बनाकर किया है । वे कला के अनुभूति पक्ष और रूप पक्ष हैं । इन पक्षों को आधार बनाकर कलाओं को चार भागों में बाँटा है ।

१. अनुभूति की कमी लेकिन रूप का आधिक्य
२. अनुभूति की तीव्रता लेकिन रूप की कमी
३. कम अनुभूति और रूप
४. अनुभूति और रूप का समन्वय

कला की परिभाषाओं के समान भारतीय मनीषियों से अधिक व्यक्त और सुगठित रूप से कला का वर्गीकरण की धारणाएँ पाश्चात्यों के पास है । हम सचमुच जानना चाहिए कि जानकारी की पहचान भारतीयों को पहले ही मिलती हैं लेकिन उनके आदान-प्रदान

में ये सक्षम नहीं थे । पाश्चात्य अपनी जानकारी का आदान-प्रदान में पहले से ही सक्षम होने के कारण उनकी खोज और जानकारी बहुमत रूप से प्रचलित है ।

पाश्चात्य मनीषियों में क्रोचे का यह मत है कि कलाओं में श्रेणी विभाजन तो किया जा सकता है लेकिन वर्गीकरण नहीं । उनकी राय में एक कला को दूसरी कला से पृथक नहीं किया जा सकता । फिर भी व्यावहारिक सुविधा के लिए कलाओं का वर्गीकरण करना आवश्यक है । माध्यमों के भेद के कारण कलाओं में जो बाह्य भेद दिखलाई जाती है उन्हीं से हम इन्हें भिन्न-भिन्न नामों से अभिहित करते है । विद्वानों ने विभिन्न आधारों पर कला का वर्गीकरण भिन्न प्रकार से किया है ।

स्थूल रूप से कला का विभाजन दो वर्गों में किया गया – ललित कला और यान्त्रिक या उपयोगी कला । ललित कलाएँ विशेषतः मनुष्य का मनःप्रसादन करती हैं और उपयोगी कलाएँ मनुष्य की व्यावहारिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है । ललित कलाएँ मनुष्य के नीतिपरक, बुद्धिपरक और भावपरक विकास में योगदान देती है और उपयोगी कलाएँ मनुष्य के शारीरिक और भौतिक उत्कर्ष में सहायकहोती है ।

अरस्तू ने उद्देश्यों की दृष्टि से कला को तीन भेद किये है ।

१. आचरण विषयक कला
२. ललित कला
३. उदार कला

उपदेशात्मक कलाओं को आचरण विषयक कला कहलाते हैं । सत्यं, शिवं, सुन्दरम् में शिवं का महत्व इस बात में है कि वह समाज को अच्छे आचरण की ओर अग्रसर करता है । आचरण समाज का जीवन का मुख्य अंग है । हर आचरण प्रत्येक कलारूपों के

द्वारा होता है । ये सब विभिन्नताओं से संपन्न होते हैं ।

ललित कला के अंतर्गत पाँच प्रकार की कलाएँ मानी जाती हैं – काव्यकला, संगीतकला, चित्रकला, मूर्तिकला और स्थापत्य कला । ललित कलाओं का संबंध हमारी मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति, सौन्दर्य बोध और अध्यात्मिक चेतना से है । आनन्द और सौन्दर्य ग्राह्य होने के कारण ललित कलाएँ उपयोगी कलाओं की अपेक्षा अधिक महत्वमयी है । सबसे उत्तम ललित कला में मूर्तरूप कम से कम होता है । संगीत में मूर्तरूप बहुत सक्षम होता है । इसी कारण से संगीत सर्वश्रेष्ठ ललित कला है । इसमें लालित्य की पराकाष्ठा होती है । जिस समाज में ललित कलाओं को अधिक मूल्यांकन और मान मिलते है उस समाज को ही अधिक शिष्ट और सभ्य समाज कहलायेगा ।

उदार कला के अंतर्गत व्याकरण, तर्क, रेखागणित, इतिहास और संगीत आदि सभी को स्थान है । हर विषय को कला से संबंध है । इसलिए विश्वविद्यालय को 'कला संकाय' कहते है ।

कुछ आधुनिक विद्वानों ने कलाओं का वर्गीकरण मेजर आर्ट और मैनर आर्ट (Major Art and Minor Art) के रूप में किए है । मेजर आर्ट सौन्दर्य की अभिव्यक्ति से संबंधित है, जिससे सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की अभिव्यक्ति होती है । माइनर आर्ट में भौतिक उपयोगिता सर्वोपरी है ।

पाश्चात्य विद्वानों में कला का वर्गीकरण करने वालों में हीगेल प्रमुख है । उन्होंने विभिन्न आधारों पर कलाओं का वर्गीकरण किया है । प्रो. विश्वनाथ प्रसाद की 'कला एवं साहित्य प्रवृत्ति और परंपरा' में हीगेल के वर्गीकरण के बारे में ऐसे कहते है कि कला के माध्यम

के आधार को लेकर उन्होंने कलाओं को तीन कोटियों में बाँटा है –प्रतीकवादी, शास्त्रीय और रुमानी । रुमानी कला ने इसमें सर्वश्रेष्ठ मानी है । हीगेल ने रुमानी कलाओं के अंदर चित्रकला, काव्यकला और संगीतकला को स्थान दिया है । प्रतीकवादी कला में वास्तुकला और शास्त्रीय कला में मूर्तिकला को स्थान दिया है । उनके अनुसार स्थूल माध्यम से अभिव्यक्ति पूर्ण रूप से नहीं होती । वास्तुकला और मूर्तिकला इन दोनों में स्थूल आधार आवश्यक है । उससे तुलना करते समय अन्य कला जैसे चित्र, संगीत और काव्य के माध्यमों को स्थूलता बहुत कम है । इसी सिद्धांत पर हीगेल ने वास्तुकला को कलाओं के कोटिक्रम में सबसे नीचे और काव्य को सबसे ऊपर माना है ।

हीगेल ने अभिव्यक्ति को आधार बनाकर कला को तीन रूपों में बाँटा है ।

१. प्रतीकवादी
२. अभिजात्यवादी अथवा शास्त्री
३. स्वच्छन्दवादी अथवा भावात्मक

प्रतीकवादी कलाओं में पहला स्थान वास्तुकला को है । इसके बाद मूर्तिकला और चित्रकला आती हैं । इस प्रकार की कला में कलाकार यथार्थ की अभिव्यक्ति न करके कला का प्रतीक अथवा चिह्नरूप में व्यक्त करता है । प्रतीकवादी कला में यथार्थ से अधिक कल्पना को प्रमुख स्थान होता है ।

अभिजात्यवादी या शास्त्रीय कला के अंतर्गत मूर्तिकला को प्रथम स्थान है । इसके बाद चित्रकला आती है । शास्त्रीय कला में कलाकार आकार और विचार को सामंजस्य करके रचना करते हैं । इसमें देश, काल, वातावरण की सच्ची अभिव्यक्ति होती है । इसलिए ऐसी कलाओं में परंपरा को प्रमुख स्थान होता है ।

हीगेल के अनुसार स्वच्छन्दतावादी कलाएँ सर्वश्रेष्ठ है । इनमें विचार और भाव अधिक सफल और स्पष्ट रूप से व्यक्त होते हैं । ऐसी कलाओं को कोई परंपरा या प्रतीकों के दायरे में बाँटा नहीं जा सकता । स्वच्छंदतावादी कला में कलाकार स्वतंत्र भाव से अभिव्यक्ति कर सकते हैं । हीगेल ने इसके आधार पर पहला स्थान काव्य फिर संगीत, मूर्ति और स्थापत्य कला को दिया है । हीगेल ने इन्द्रियों को आधार बनाकर कलाओं का वर्गीकरण किया है । इसमें दो भाग है ।

१. दृश्य २. श्रव्य

नृत्य, चित्र, मूर्ति और वास्तुकला को दृश्य कला के अंतर्गत रखा है । संगीत और काव्य को श्रव्य कला में स्थान दिया है । दृश्य कलाओं की मूर्तता और श्रव्य कलाओं की अमूर्तता के कारण दृश्य कलाएँ, निम्न कलाएँ और श्रव्य कलाएँ उच्च कलाओं की श्रेणी में आती हैं ।

हीगेल के बाद कला के पाश्चात्य व्याख्याताओं में प्रमुख स्थान टॉलस्टाय को है । उन्होंने कलाओं को तीन भागों में विभाजित किया है ।

१. प्रवृत्तिमूलक (Tendencious)
२. सौन्दर्यात्मक (Aesthetics)
३. यथार्थवादी (Realistic)

प्रवृत्तिमूलक कला में मानव धार्मिक, चारित्रिक, सामाजिक और राजनैतिक सत्य की ओर अग्रस्त करने वाली प्रवृत्तियों को आधार बनाते हैं । इन कलाओं में विचारों की उच्छता होने के कारण ये समाज कल्याण में सहायक भी होते हैं ।

सुन्दरता पर अधिक बल देनेवाले कलाओं को सौन्दर्यात्मक कला कहलाते है ।

इसमें कला कला के लिए सिद्धान्त का स्पष्टीकरण हमें देखने को मिलते है । इन कलाओं में शैली और तकनीक की विशेषता, आकार का अभौतिकरूप, आकाररहित आकार अर्थहीन अर्थ और भाव के विकृत रूप में अभिव्यक्ति होती है । यह उपदेशात्मक तत्व से अलग रहते है ।

यथार्थवादी कलाओं में समाज का प्रतिबिम्ब हमें देखने को मिलते है । यह कला की सच्ची अभिव्यक्ति है । इसमें वस्तु या पात्र की सच्ची अनुकृति है । समाज की कमियों का स्पष्टीकरण में इस कला को प्रमुख स्थान है ।

इनके अलावा श्री बोसां (Bosan) ने कलाओं को अभिव्यक्ति के माध्यमों के आधार पर चार भागों में बाँटा है ।

१. रूप की कला
२. वाणी की कला
३. स्वरों की कला
४. गति की कला

रूप की कला में उन्होंने चित्र, मूर्ति और वास्तु को स्थान दिया है । इसमें नामकरण के अनुसार रूपों से इन कलाओं की अभिव्यक्ति होती हैं । वाणी की कला में वाणी के द्वारा अभिव्यक्ति करने वाली काव्य कला को स्थान दिया है । स्वरों की कला में संगीत कला को ही स्थान है । संगीत, स्वरों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है । गति की कला में नृत्य कला को स्थान दिया गया है ।

जार्ज संतायन ने कलाओं को दो भागों में विभाजित किया है – आर्गोनिक (Organic) और दूसरा आटोमैटिक (Automatic) । जिन कलाओं की अभिव्यक्ति बाह्य साधनों पर आधारित है, उनको आर्गोनिक कला कहते है । जिन जिन कलाओं की अभिव्यक्ति

सहज रूप से (automatically) होती है उन कलाओं को आटोमैटिक कला मानते है ।

१.४ ललित कलाओं का विश्लेषण

उपर्युक्त वर्गीकरणों से हम समझ सकते हैं कि कलाओं का अधिक सार्थक एवं बहुगणित वर्गीकरण ललित कला और उपयोगी कला के रूप में ही है । उपयोगी कलाएँ दैनिक व्यवहार को सुन्दर और सफल बनाते है लेकिन उसमें भावनापक्ष विशेष प्रबल नहीं है । इसलिए इन कलाओं के लिए बाह्य सामग्रियों का आधार आवश्यक है । लकडी, लोहे, ईंट, पत्थर आदि से बनाने वाले चीज़ों में कलापक्ष अवश्य है । लेकिन निर्माण के बाद भी इन चीज़ों का महत्व वैसे ही रहते है । ऐसी मूर्तता के कारण इन कलाओं को गौण मानते हैं ।

जिन कलाओं में सौन्दर्य और भावपक्ष प्रबल होते हैं और निर्मित चीज़ों की अपेक्षा कलाकार के व्यक्तित्व जिन कलाओं में महत्वपूर्ण है उन कलाओं को ललित कला मानते हैं । कलाकार की अभिव्यक्ति की प्रधानता ललित कला के महत्व को ऊपर उठाती है । पाश्चात्य विद्वानों ने ललित कलाओं के अंतर्गत पाँच प्रकार की कलायें मानी है – काव्यकला, संगीतकला, चित्रकला, मूर्तिकला और स्थापत्य कला ।

भारतीय विद्वानों की दृष्टि में ललित कलाओं के अंतर्गत काव्यकला, संगीत, नृत्य एवं नाट्य कला चित्रकला, मूर्तिकला और वास्तुकला आती हैं ।

१.४.१ काव्यकला

पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वान एक समान काव्य कला की सर्वश्रेष्ठता पर सहमत है । यह पूर्ण रूप से भौतिक उपकरणों से मुक्त है । काव्य का एक मात्र 'आधार' शब्द है । इन शब्दों से उत्पन्न अर्थों से इसकी अभिव्यक्ति होती है । ये शब्द और अर्थ दो न होकर

एक ही वस्तु के दो भाग है । भर्तृहरि शब्द और अर्थ को एक ही आत्मा के भेद कहते है । शब्द और अर्थ पृथक कर नहीं सकते । काव्य शास्त्र में शब्दों को वाचक, लक्षक और व्यंजक माना गया है और अर्थ को वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य ।

एक शब्द में एक से अधिक शक्तियाँ होती हैं । इसलिए एक ही शब्द से अनेक अर्थों की व्युत्पत्ति होती है । पाश्चात्यों ने शब्द (word) के दो प्रकार के अर्थ को अपनाया है । वे – कोशगत (Grammatical or Logical) और संवेगात्मक या प्रतीकात्मक (Emotive or Suggestive) है ।

रिचड्र्स और ऑगडेन शब्द को दो प्रकार में मानते है । वे तर्क प्रधान (Rational) और संवेगात्मक (Emotive) है । भारतीय काव्यशास्त्री आनन्दवर्धन के अनुसार कवि का उद्देश्य को आह्लाद प्रदान करना होता है और वह अपने इस उद्देश्य की पूर्ति सौन्दर्य-निर्मिति से करता है । इससे कविपक्षक या श्रोता के मन में काव्य को चिरस्थायी बनाते हैं ।

१.४.२ संगीतकला

सम् + गीत सम्यक गीत को संगीत कहते है । संगीत का आधार नाद है । लेकिन केवल नाद से ही संगीत की उत्पत्ति नहीं हो सकती । संगीत गीत और वाद्य की अन्विनि है । भौतिक उपकरणों और आधारों की सूक्ष्मता काव्य और संगीत को एक श्रेणी में लाते है । संगीतकार भी ध्वनि की सहायता से भावों की अभिव्यक्ति करता है ।

वैदिक काल से भारत में संगीत कला का प्रभाव है । ऋग्वेद के 'शांखायन ब्राह्मण' के अनुसार – नृत्य, गीत और वाद्य तीनों शिल्पों का अभिन्न साहचर्य है । भारतीय पद्धति में क्रमशः षडन , ऋषभम, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद और तार षड्ज है ।

पश्चमी पद्धति में इन्हें C, D, E, F, G, A, B, C कहते है । स्वर के विस्तार को ध्यान में रखकर उसके तीन स्थान किये गये हैं – मंद्र, मध्य और तार । मंद्र हृदय में, मध्य कंठ में और तार मस्तक में उत्पन्न होता है । आधुनिक युग में रागों को छः पुरुष रागों, छत्तीस रागिनियों और उनके पुत्रों और पुत्रवधुओं में विभाजित किया गया है ।

भारतीय एवं पाश्चात्य संगीत की संरचना में मौलिक रूप से भिन्नता है और साथों साथ दोनों का अपना-अपना सौन्दर्य भी है ।

१.४.३ नृत्य एवं नाट्यकला (Dance and Theatre Art)

संस्कृत में 'नट्', 'नत्' और 'णत्' तीन धातुएँ है । इसमें 'नट्' धातु से नाट्य, 'नत्' धातु से नृत और 'णत्' धातु से नृत्य शब्द की व्युत्पत्ति हुई है । इसलिए भारतीय नृत्य और नर्तन को नाट्य कला का ही अंग माना गया है । भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र को मुख्य कला और अन्य कलाओं को गौण कहते है । उनके अनुसार सब कलाएँ नाट्य कला के अंतर्गत ही है ।

देवताओं, असुरों, राजाओं, ऋषियों, गृहस्थों आदि के कार्यों को भरतमुनि नाट्य कहते हैं । पाणिनी के अनुसार नटों के धर्म को नाट्य कहा जाता है । धनंजय ने अवस्थाओं की अनुकृति को नाट्य कहा है । नाट्य का आधार रस है । इसलिए इसे रसाश्रित कहते है ।

धनंजय के अनुसार नृत्त, ताल और लय पर आश्रित होता है । शारदातनय ने नृत्य को भावात्मक और नृत्त को रसात्मक माना है । नाट्य शास्त्र में नाट्य की परिभाषा – 'वाक्यार्थाभिनय रसाश्रयं नाट्यं' कहा जाता है । अर्थात् नाट्य में वाक्यार्थ की प्रतीति अभिनय के माध्यम से होती है । उसी माध्यम से रसों की उत्पत्ति भी होती है ।

अभिनय की व्युत्पत्ति णीज् धातु से अभि उपसर्ग के संगम से हुआ है । जो सहृदय को आस्वादन कराती है और जो हृदयगत भाव को प्रकाशित करती है । वे सब अभिनय हैं । अभिनय चार प्रकार के होते हैं । आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक ।

भरतमुनि के नाट्य शास्त्र में नृत्य भी अभिनयात्मक कहते है । नृत्य में पाँच क्रियायें है । वे स्थान, पद-संचालन, करण, अंगकार और रेचक हैं । पद संचालन नृत्य का प्रमुख अंग है । नृत्य के मुख्यतः दो भेद किये जाते है – तांडव व लास्यों भरतनाट्य, कत्यक, मणिपुरि, कथकली, कुचिपुडी व ओडीसी आदि नृत्य शैलियों को भारतीय नृत्यों की श्रेणी में रख्रा गया है ।

१.४.४ चित्रकला

विष्णुधर्मोत्तर पुराण के चित्रसूत्र ख्रण्ड में चित्रकलाकी श्रेष्ठता के बारे में कहा गया है । रेख्रा, वर्ण, वर्तना और अलंकरण से चित्र का स्वरूप निष्पादित होता है । चित्रकला के छः तत्व माने गये हैं । वे रेख्रा, रूप, तान, पोत व अन्तराल (Line, Form, Colour, Tone, Texture and Space) हैं ।

भारतीय चित्रकला का इतिहास मानव उत्पत्ति की चिरसंगिनी है । ऋग्वेद, तीसरी व चौथी शती ईसा के पूर्व बौद्ध ग्रंथ 'विनय पिटक' तथा 'थेरी-थेरी-गाथा' आदि से चित्रकला संबन्धी कई महत्वपूर्ण उल्लेख मिलता है । प्राचीन काल में तीन प्रकार के चित्र बनाते थे – भित्ति-चित्र, पट-चित्र और फलक-चित्र ।

आलेख्रन से चित्र कला का आरंभ होता है । चित्रकार कल्पना में पूर्ण विश्वास रख्रता है । और इस कल्पना के सहारे नये रूपों का सृजन करता है । चित्रकला की अभिव्यक्ति

केवल दो मान पर होती है, वे लंबाई और चौडाई में है । रंग, कूँची (brush), लेखनी इसके साधन है । चित्रकला से अनगिनत भावों की अभिव्यक्ति हो सकती है ।

१.४.५ मूर्तिकला

मूर्तिकार मिट्टी, पत्थर अथवा धातु को त्रिआयामी आकार व रूप प्रदान करने को मूर्तिकला कहता है । भारतीय समाज में मूर्तिकला को अत्यंत उच्च स्थान प्राप्त हुआ है । इसलिए भारतीय प्राचीन मंदिरों में मूर्तिकला का कई छाप हम देखा जा सकते हैं । प्राचीन काल से मूर्तियों के निर्माण के लिए कई प्रकार के द्रव्यों, धातुओं और रत्नों का उपयोग होता ही रहता है । प्राचीन काल में मूर्ति निर्माण में धार्मिक भावना की प्रधानता रहती थी । शुक्रनीतिसार के अनुसार देवताओं की प्रतिमायें – सात्विक, राजसिक व तामसिक तीन प्रकार की होती हैं । प्रतिमाओं के तीन प्रकार की मुद्रायें विशेष रूप से मानी जाती हैं – हस्तमुद्रायें, पादमुद्रायें और शरीर मुद्रायें ।

भारतीय मूर्तिकला के प्रयोजन धार्मिक, स्मारक और आलंकरण हैं । आधुनिक मूर्तिकार यथार्थ जगत् के सभी रूप-रंगों को मूर्त कर सकता है । अनेक आकृतियों के संयोग से मूर्तिकार किसी घटना की ओर भावपूर्ण संकेत भी करता है । स्थिति-शील रूप में सौन्दर्य का अंकन करना मूर्तिकला की विशेषता है । इसमें रूप, रंग और आकार होता है ।

१.४.६ वास्तुकला अथवा स्थापत्य कला

'वस्' धातु से 'वास्तु' (Architecture) शब्द की उत्पत्ती हुई है । इस शब्द का अर्थ 'निवास करना' है । भारतीय वास्तुकला का विकास अन्य कलाओं के समान धर्म से ही है । अजंता एलोरा आदि गुफा मन्दिरों में चित्र, मूर्ति एवं स्थापत्य कलाओं का सम्मिश्रण

देखने को मिलता है ।

भारतीय वास्तुकारों ने सौन्दर्य के साथों साथ सत्यम और शिवम् को भी अभिव्यक्त किया है । वास्तुशास्त्र में भवन निर्माण को मानव-शरीर के रूप में ग्रहण करके इसको आधार बनाकर भवन और निवासियों के बीच शरीर और आत्मा का संबन्ध स्थापित करता है ।

वास्तुशास्त्रकारों के अनुसार नागर, द्राविड और बेसर आदि तीन शैलियाँ वास्तु की हैं । इन तीनों शैलियों का संबन्ध ब्रह्मा, विष्णु और महेश से है । वास्तुकला में मूर्त आधार सबसे अधिक स्थूल रहता है । इसलिए उसकी कृति में सजीवता या गतिशीलता नहीं आ पाती; फिर भी उसमें हमारे मन में सौन्दर्यानुभूति या भाव के उन्मेष की क्षमता रहती है । ताजमहल के दर्शन से हमारे मन में जो आह्लाद और भावोन्मेष होता है वह उतना ही स्थायी और प्राणपूरक है ।

१.५ कलाकार - स्वरूप विवेचन

१.५.१ कलाकार : शब्द एवं अर्थ

कलाकार शब्द की उत्पत्ति, 'कला' के साथ 'आकार' शब्द के प्रयोग से हुआ है । इसका अर्थ निर्माण करना अथवा सृजन करना है । वह व्यक्ति जो कला को रूप प्रदान करता है वही कलाकार है । और अधिक स्पष्ट रूप में कहे तो अंतर्मन में जो परम सत्य है उसे रूपाकार कोई देता है वही कलाकार है ।

ईश्वरीय सृष्टि में सबसे विकसित स्वरूप मनुष्यों में देखने को मिलते हैं । मनुष्य अपने ही क्रिया-कलापों से आनंद प्राप्त करने वाला प्राणी है । इस अभूतपूर्व दर्शन कला में

निहित है । उस परिपूर्ण आनंद की पूर्ती आत्म-बलिदान से होती है । इसलिए वह ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण का द्योतक होता है । यह आदर्श अमूर्तता आस्था बन जाता है । इसी कारण से मानव में भी आदर्श और चेतना के साथ सृजन की प्रवृत्ति मूल रुप में निवासित करती है।

श्री सुन्दरमोहन स्वरूप भटनागर ने मानव के विशिष्ट रुप से कलाकार की सृजनात्मकता को अपने शब्दों में व्यक्त किया है । "कलाकार सृष्टा होता हैं; क्योंकि वह अपनी इच्छाओं को आकार देता है । उसे अमूर्त से मूर्त बना देता है । उसे अपने मन के अन्दर से सभी के सामने ला देता है । और कहता है – यह मेरा मन है, यही मेरी इच्छा है । क्या चित्रकार क्या साहित्यकार सभी कलाकार के विषय यह बात कही जाती है ।"[11]

धार्मिक धरातल के अनुसार परमात्मा ने इस ब्रह्माण्ड की रचना की है । ईश्वर की हर सृष्टि के समान ब्रह्माण्ड की रचना भी अपूर्ण बन गयी होगी । इस अपूर्णता को दूर करने के लिए परमात्मा स्वयं कलाकार का मन-मस्तिष्क में प्रणेता बनकर निवास करने लगे । उस प्रेरणा से कलाकार आनन्द शक्ति का स्रोत होकर संपूर्ण आनंद का सृष्टा बन जाता है ।

भारत में कला का संबन्ध धर्म से है । इसी प्रकार ग्रीक सभ्यता में कला पूजा का एक साधन है । भिन्न माध्यम से कलाकारों ने भिन्न प्रकार की कला-कृतियों का निर्माण किया है । कलाकार और कलाकृति एक दूसरे से अपरिचित और भिन्न होने पर भी सभी एक ही मार्ग की ओर संकेत करते है । "मूर्ति और चित्रकला में जो कार्य मशहूर चित्रकार माइकेल एंजिलो का है संगीत में वही बिथोवन और तानसेन के है ।"[12]

कलाकार एक दूसरे से क्षेत्र में, माध्यम में तथा रचनाकाल में अतिविभिन्न होने पर भी भावना के अतिसमीप है । कलाकार अपने औजार से कला को अधिकाधिक पूर्ण करने

का प्रयत्न करते है । इनका प्रयत्न सत्यं, शिवं, सुन्दरं की ओर अधिकाधिक परिपक्व है ।

१.५.२ कलाकार एवं सौन्दर्यबोध

कुशल कलाकार की आत्मा सच्चा और भावना पवित्र होती है । यही सच्चाई और पवित्रता बचपन में चित्र खींचने और गीत गाने की रुचि हमें देती है । यह क्षमता हर व्यक्ति में आयु बढ़ने के साथ कम हो जाती है । कलाकार को अपने चरित्र में बचपन के समान शुद्धता और निर्मलता कहाँ तक है उसकी कला उसी सीमा तक पूर्णता को प्राप्त कर सकेगी । हर सफल कलाकार की कला अपनी सीमा से पूर्ण है । उस पूर्णता का मतलब आकार की पूर्णता से नहीं उसके गुण की पूर्णता से है । जिस सृष्टि से ब्रह्मानन्द का अनुभव होता है वह पूर्ण है। कलाकार ब्रह्मत्व को आत्मबलिदान, आत्मप्रेम और इस आत्म समर्पण से प्राप्त करता है ।

भारत में कला का विकास कला के लिए न होकर आत्मस्वरूप के साक्षात्कार के लिए हुआ है । भारतीय कलाकार निष्पाप सैन्दर्य ईश्वर का ही मानते हैं इसलिए परंपरा ज्ञानी कलाकार आत्माभिव्यक्ति के समान अध्यात्मिकता को भी स्थान देता है । भारतीय कलाकार के लिए सौन्दर्य ही ईश्वर है । सौन्दर्य चेतना और कला का संबन्ध भारतीय कलाकार के समान पाश्चात्य विचार को भी मानते है । 'जार्ज सान्तायन' ने सौन्दर्य और आनन्द को पर्याय मानते हुए वस्तुनिष्ठ आनन्द को सौन्दर्य का जनक कहा है ।

कलासृजन के लिए अनिवार्य सैन्दर्यबोध को मुक्तिबोध ने अपने शब्दों से व्यक्त किया है – "कला सृजन के लिए विकसित सौन्दर्य चेतना तीव्र भावबोध सम्यक मूल्यबोध और संतुलित और संकल्पित जीवन-चिंतन अनिवार्य तत्व है । सौन्दर्य बोध के मूल्य परंपरागत सामाजिक संस्कारों से विकसित होते है और उनके स्वरूप निर्धारण में युग बोध भी सक्रिय होता

है । सृजन प्रक्रिया के बिना सौन्दर्य बोध असंभव है; क्योंकि सौन्दर्य तब संपन्न होता है जब सृजनशील कल्पना के सहारे संवेदित अनुभव का ही विस्तार हो जाय ।"[13]

कलाकार अपनी सृष्टि का मालिक है । कला में कलाकार की व्यक्तित्व झलकता है, नहीं तो उसकी कला निर्मूल्य होती है ।

१.५.३ कलाकार और कारीगर

कलाकार का व्यक्तित्व साधारण व्यक्ति से अलग होता है । इसको सपष्ट करने के लिए कलाकार के लक्षणों के बारे में अज्ञेय जी की महत्वपूर्ण राय पर ध्यान देना चाहिए । "अथक श्रम सामर्थ्य और अध्यवसाय, बहुमुखी, क्रियाशील, प्राचुर्य, चिर-जाग्रत, चिरनिर्माणशील, कल्पना सतत् जिज्ञासा और पर्यवेक्षण देश-काल या युग सत्य के प्रति सतर्कता, परंपरा-ज्ञान, मौलिकता और आत्मविश्वास के सक्रिय संघात से एक कलाकार का निर्माण होता है ।"[14]

मनुष्य की अपनी सहज विशिष्टता और सामाजिक सांस्कृतिक तत्वों के माध्यम की संयोजित संवेदना से कलाकार का व्यक्तित्व पूर्ण होता है । कलाकार और समाज का संबंध केवल एक तरफ के नहीं दोनों आपस में अनिवार्य और अविभाज्य मानते है । एक कलाकार जिस समाज और संस्कृति में पनपते है वह उसी समाज का सर्जक भी बन जाता है । समाज और संस्कृति का मूल्यपरक परिवर्तन, संशोधन और परिवर्धन प्रतिभावान कलाकार का कर्तव्य है । इसलिए प्रत्येक कलाकार समाज का एक अनिवार्य और अविभाज्य अंग है ।

सामान्य शब्द कोश में, कलाकार को किसी भी ललित कला का अभ्यास कर्ता कहा जाता है । यदि यह अर्थ संपूर्ण हो तो कला के विभिन्न क्षेत्र के कारीगरों को भी कलाकार कह सकते है । कलाकार मौलिक सृजन करके आत्म-बन्धन से मुक्ति दिलाते है । कारीगर

सुन्दर कलओं की अनुकृति से पूर्णता प्राप्त करते है । डॉ. चिरंजीलाल झा के अनुसार, "जो प्राणी किसी कला कृति को मौलिक रूप से जन्म देता है वह कलाकार है ।"[15] "ज्ञाता और ज्ञान मिलकर ज्ञान की ज्योति कैसे जगमगाती है, दर्शक और दृश्य की मिलावट से सत्य का दर्शन कैसे होते है उसी तरह कला और आकार मिलकर सच्ची कला को जन्म मिलता है ।"[16] सामान्यतः सच्ची कला भावात्मक और व्यावहारिक रूप में संपूर्ण है । यह संपूर्णता उस ज्योतिमयी शक्ति का साक्षात्कार है । इसलिए निष्कर्ष के रूप में कलाकार को उस ज्योतिमयी शक्ति का साक्षात्कारक कहा जा सकता है । कलाकार कला के द्वारा उस ज्योति से जनमानस का व्यक्तित्व, समाज और संस्कृति को प्रकाशमय बनाते हैं ।

१.५.५ संवेदन प्रक्रिया के आधार पर कलाकार और साधारण व्यक्ति - एक तुलना

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर कलाकार की बिम्ब सृष्टि बचपन की अनुभूतियों से संगठित एवं विकसित है । कलाकार और साधारण व्यक्ति से तुलना करते हुए मनीषियों की राय यह है कि कलाकार की मानसिक स्थिति बालक के समान है । बचपन में हर व्यक्ति को विविध वस्तुओं, घटनाओं के प्रति एक भावनिक लगाव होता है । लेकिन यह लगाव बचपन की पूर्ति के साथ गायब हो जाता है । प्रौढ़ अवस्था में व्यक्ति समाज और संस्कृति के अनुसार अपना दृष्टिकोण रूपायित करने में अधिक ध्यान देता है । इसलिए साधारण व्यक्ति बचपन के भावनिक लगाव को भूलकर व्यावहारिक जीवन में बंधनस्थ हो जाता है ।

कलाकार का मन बालक के समान होता है । बालकों में जीवन का कारण स्पष्ट और निश्चित है ही नहीं । बचपन में संसार की किसी भी वस्तु या घटना को व्यावहारिक दृष्टिकोण से हटकर अवबोधित करता है । बच्चों का प्रत्येक संवेदन और अनुभवों को पुराने से नाता जोड़ने का अवसर नहीं मिलते है । उनके अनुभव जीवन से निरपेक्ष और नये-नये होते

हैं । अपने प्रत्येक संवेदनों को मूर्त रूप में ग्रहण करते है । बालक निर्जीव वस्तु का सजीवीकरण एवं मानवीकरण करते रहते हैं । उनकी ऐसी प्रवृत्तियाँ बालक के अन्तर्मन और बाह्य जगत् के बीच अलगाव को दूर करती हैं ।

फ्रायिड ने मानवीय मन को चेतना के स्तर पर तीन हिस्सों में विभाजित किया है । वे इदम (इड), अहं (इगो) और सुप्राहम (सुपर इगो) । व्यक्ति मन का सबसे निचला स्तर 'इदम्' से परिचालित होता है । सबसे ऊँचा स्तर 'सुप्राहम्' से संचलित होता है । 'अहम्' इन दोनों में होता है । इदम् पर समाज के नियम, प्रतिबंध नैतिकता सामाजिक दायित्व आदि का प्रभाव नहीं पड़ता है । इदम् निर्द्वन्द्व कामवासना का एक मात्र संग्रहालय है । इसमें पूर्वजों द्वारा प्राप्त जातीय गुण विशेषताएँ भी समाविष्ट है । बचपन में व्यक्ति केवल इदम् के अथवा प्रकृत इच्छाओं का संग्रह मात्र होता है । ऐसी स्थिति में व्यक्ति अपना मानसिक रूप धारण करता है। नकारात्मक संकल्पना और समय की संकल्पना इदम से बाँध नहीं सकती ।

इर्बर्ट रीड के अनुसार "कलाकार इदम् से सर्जन की प्रेरणा ग्रहण करता है । इसमें रचना के सूत्र मिलते है । इदम् से प्राप्त रचना की प्रेरणा को अपने अहं के माध्यम से जागतिक अनुभवों और संवेदनाओं के संपर्क में रखकर कलाकार रूपात्मक संश्लेषण प्रदान करता है और अंत में नैतिक मन की देन वैचारिक तत्वों और आत्मिक आकांक्षाओं को उससे समन्वित करता है ।"[17]

संदर्भ सूची

1. राज किशोर सिंह – प्राचीन भारतीय कला एवं संस्कृति – पृ. १७

2. रूपनारायण बाथम – पारिभाषिक कला कोश – पृ. १४

3. प्रो. विश्वनाथ प्रसाद – कला एवं साहित्य : प्रवृत्ति और परंपरा – पृ. २१६

4. वही – पृ. ११४

5. डॉ. रामनिवास गुप्त – काव्यशास्त्र के मानदण्ड – पृ. ३७

6. जयशंकर प्रसाद – काव्य और कला – पृ. २४

7. आर्स्ट फिशर, अनुः रमेश उपाध्याय – कला की ज़रूरत – पृ. ११४

8. चिरंजीलाल झा – कला के दार्शनिक तत्व – पृ. २२

9. मीनाक्षी कासलीवाल – ललित कला के आधार भूत सिद्धांत

10. डॉ. अविनाश बहादुर वर्मा – कला एवं तकनीक – पृ. १२

11. प्रेमचन्द गोस्वामी – कला सौन्दर्य और प्रकृति – पृ. १०१

12. प्रो. रणवीर सक्सेना – कला और कलाकार का कर्तव्य – पृ. १२३

13. शिवकरण सिंह – कला सृजन प्रकिया – पृ. ३३

14. प्रेमचन्द गोस्वामी – कला सौन्दर्य और प्रकृति – पृ. १०१

15. चिरंजीलाल झा – कला के दार्शनिक तत्व – पृ. १०८

16. प्रेमचन्द गोस्वामी – कला सौन्दर्य और प्रकृति – पृ. १७

17. हर्बर्र रीड – कलेक्टेड एसेज़ इन लिटरेरी क्रिटिसिज़म – पृ. १३७

अध्याय – २

आत्मसंघर्ष - विश्लेषण और विविध आयाम

ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट सृष्टि मानव है । शारीरिक एवं मानसिक स्वरूप से परिपूर्णता प्राप्त मानव आत्मा का बलिदान दूसरों के लिए करने से आनन्दित करनेवाला प्राणी है । यह गुण मानव को एक सामाजिक प्राणी बना देती है । समाज का निर्माण करने वाला मानव ही उसका पुनर्निर्माण भी करती है । मानव और समाज की गुणकारी भावनाओं से साहित्यकार साहित्य की सृष्टि करते हैं ।

नन्ददुलारे वाजपेइ ने साहित्य के नामकरण की सार्थकता को अपने शब्दों में व्यक्त किया है – "साहित्य में मनुष्य का जीवन ही नहीं जीवन की वे कामनाएँ निहित रहती हैं जो अनंत जीवन में भी पूरी नहीं हो सकती । जीवन यदि मनुष्यता की अभिव्यक्ति है तो साहित्य में उस अभिव्यक्ति की आशा-उत्कंठा भी सम्मिलित है । जीवन यदि संपूर्णता से रहित है तो साहित्य जीवन से अधिक रसवान और परिपूर्ण है तथा जीवन का नियामक और मार्गद्रष्टा भी रहता आया है ।"[1]

मानव सदा अपनी क्षमताओं के सहारे जीवन की अपूर्णताओं को संपूर्ण बनाने की कोशिश में रहते है । प्राप्त जीवन से उत्पन्न कामनाएँ मानव मन को संघर्ष-भूमि बनाती हैं । कला और साहित्य उन संघर्षों की सकारात्मक प्रतिक्रिया है । साहित्यकार इन संघर्षों को साहित्य के विभिन्न विधाओं के द्वारा प्रस्तुत करता है ।

संसार गतिमय है । इस गतिमयता का मूल स्रोत संघर्ष है । संघर्ष के बिना व्यक्ति में, समाज में और संसार में कोई भी बदलाव नहीं हो सकते । प्राप्य से अप्राप्य की ओर

की गति को संघर्ष कहलाते हैं । जब से संघर्ष के द्वारा अप्राप्य प्राप्य हो जाता है तब से नये अप्राप्यों केलिए नये संघर्ष शुरू होता है ।

साहित्य समाज का दर्पण है । इसलिए मानव जीवन के संघर्षों की छाया साहित्य में प्रतिबिंबित हो जाती है । साहित्य को प्राप्य और अप्राप्य के बीच की संघर्ष यात्रा स्वीकार करते हुए डॉ. प्र.रा. भुपटकार का कथन माननीय है । "काव्य प्राप्त और प्राप्य के संघर्ष में जन्म लेता है । प्राप्त से मनुष्य को संतोष नहीं होता । अतः प्राप्य या काम्य की कांक्षा उसके मन में जन्म लेती है । मनुष्य प्राप्य की कल्पना करने लगता है और कल्पना प्रकृति से परे अपने संसार का सृजन करती है । वह बड़ी प्रसन्नता से उन्हें जोड़ देती है जिन्हें प्रकृति ने तोड़ रखा है अथवा उन्हें विच्छिन्न कर सकती है जिन्हें प्रकृति ने अभिन्न बना रखा है ।"[2]

संघर्ष शब्द का प्रयोग अधिकतर पाठकों में नकारात्मक भाव उत्पन्न करते हैं । इसका कारण यह है कि संघर्ष झगड़ा, युद्ध जैसी शब्दों की समानार्थी है ।

संघर्ष बदलाव का पहला कदम है । संघर्षहीन संसार कैनवास का अव्यक्त और अपूर्ण चित्र के समान है । समाज की गति को निर्धारित करने वाला संघर्ष की शाब्दिक एवं पारिभाषिक जानकारी कला में संघर्ष के महत्व को व्यक्त करने में लाभदायक होगा ।

२.१ संघर्ष : शाब्दिक एवं पारिभाषिक व्याख्या

समाज परिवर्तनशील है । व्यक्ति स्वयं अपने विचारों, मान्यताओं, आदर्शों और रीतियों द्वारा समाज व्यवस्था का नियमन करता है, इसलिए व्यक्ति समाज का महत्वपूर्ण अंग है । समाज की परिवर्तनशीलता के कारण एक समय में बने हुए नियम आने वाले समय में परिस्थिति के अनुरूप नहीं हो जाते हैं । जब यह अनुरूपहीनता व्यक्ति महसूस करते है तब उसके अन्दर बदलाव के संघर्ष शुरू होते है । इस संघर्ष का फलस्वरूप व्यक्ति स्वयं निर्मित

नियमों को तोड़कर नए आदर्शों, विचारों, मान्यताओं, रीतियों, नियमों को बनाता है । वायु और स्वनतंत्रियों के संघर्ष से उत्पन्न आवाज़ से व्यक्ति संसार को मुट्ठी में भर लेता है । व्यक्ति के मन में पैदा हुआ संघर्ष सामाजिक स्तर पर कितनी गहराई से पड़ जाता है उतनी गहराई में कलाकार के मन में बीज वपन करते हैं । यह कभी-कभी महत्वपूर्ण सृष्टियों के कारिणीभूत हो जाते हैं । इस कारण से संघर्ष को सृष्टि का आधार बिन्दु कहा जा सकता है ।

संघर्ष दो परस्पर विरोधी वस्तुओं की टकराहट है । हिन्दी शब्द सागर में संघर्ष का शाब्दिक अर्थ "दो व्यक्तियों की लडाई, झगड़ा, बखेडा, कलह आदि दिये गए हैं ।"[3] हिन्दी विश्व कोष भी संघर्ष का शाब्दिक अर्थ "कलह, झगडा, बखेडा कहा गया है ।"[4] ज्ञान शब्द कोश और बृहत् हिन्दी कोष में संघर्ष शब्द का शाब्दिक अर्थ समान रूप में व्यक्त किये हैं – "संघर्ष दो व्यक्तियों का परस्पर युद्ध कलह या द्वन्द्व है ।"[5 6]

संघर्ष शब्द का अंग्रेज़ी पर्यायवाची शब्द conflict है । Conflict शब्द का अर्थ Dictionary and Encyclopaedia में to dash together, to clash a violent clashing, a trial of strength and strong disagreement आदि दिए हुए हैं ।

शब्दिक अर्थ के रूप में संघर्ष को दो परस्पर वस्तुओं की झगड़ा, युद्ध या टकराहट कहा जा सकता है । लेकिन संघर्ष इन शब्दों से आगे और कुछ भी है । यह केवल बाह्य प्रक्रिया नहीं इसमें आंतरिक और बाह्य परिस्थितियों का प्रभाव है ।

२.२ संघर्ष के विभिन्न दृष्टिकोण

२.२.१ संघर्ष का मनोवैज्ञानिक संदर्भ

A Dictionary of Psychology में संघर्ष को opposition between

contradictory impulses or wishes as a rule producing emotional tension often highly disagreeable leading according to psychoanalytic theories, to repression of one of the empulses कहा है । डॉ. मंजुला गुप्ताने इसका अनुवाद किया है कि – "आंतरिक इच्छाओं, अभिलाषाओं और उपलब्धियों की प्रतिकूलता में संवेगात्मक तनाव से उत्पन्न विरोधी स्थिति की अभिलाषाओं और सामाजिक उपलब्धियों के अस्वीकार तथा बाह्य वातावरण के मध्य होता है । व्यक्ति अपनी परिस्थितियों और उपलब्धियों के अस्वीकार तथा बाह्य वातावरण के मध्य होता है । व्यक्ति जब अपनी परिस्थितियों और उपलब्धियों से समझौता नहीं कर पाता तो उसके मन में तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, परिणामत: या तो वह पराजय स्वीकार कर मन को समझा लेता है अर्थात् इच्छाओं का दमन असंभव हो जाता है और व्यक्ति बुद्धि को नकारने लगता है, तो संघर्ष उत्पन्न होता है ।"[7]

The Dynamic Personality में संघर्ष की आवश्यकता को व्यक्त किया गया है । संघर्ष के बिना मनुष्य के अस्तित्व विकास असफल है । संघर्ष व्यक्ति का विरासत है ! व्यक्ति की अपनी आंतरिक अभिलाषाओं, सामाजिक उपलब्धियों तथा बाह्य वातावरण इन सबके बीच संघर्ष होता है । जब इच्छाओं का दमन असंभव हो जाता है तब संघर्ष उत्पन्न होता है ।

Dictionary of Education, conflict को – a painful or unhappy state of consciousness resulting from a clash or contest of in champatiable desire, aims, drives कहते हैं । इसके अनुसार संघर्ष बोध मन की दर्दनात्मक संवेदना है । असमंजस परिस्थितियों में उत्पन्न इच्छाओं, अभिलाषाओं की अप्राप्यता से उत्पन्न पराजय की तनाव को संघर्ष कहते है ।

२.२.२ संघर्ष का समाजशास्त्रीय संदर्भ

समाजशास्त्रीय दृष्टि में संघर्ष एक प्रतियोगिता है । अपने जीवन, स्वातंत्र्य, जायदाद आदि अपने अधिकार में जो है उसकी रक्षा और अधिक प्राप्ति के लिए व्यक्ति द्वारा संघर्ष किया जाता है अर्थात् जो अपने अधिकार में नहीं है उसे प्राप्त करने में ऐसे सुरक्षात्मक एवं विनाशात्मक तथा विघटनात्मक संघर्ष करते है । Conflict may involve the defense of what one already has or the aquisition of what one has not.

A Dictionary of Social Sciences conflict may be defined as a struggle over values and claims to scarce status, power and resources in which the aims of the opponents are to nutralise injure on eleminate their rivals.

समाज की रुढ़ियाँ, परंपराएँ, मर्यादाएँ, मान्यताएँ व्यक्ति या समाज के एक अंश की इच्छाओं, अभिलाषाओं के आडे आते समय सामाजिक संघर्ष उत्पन्न हो जाते है ।

Encyclopaedia of Social Sciences में संघर्ष को ऐसे परिभाषित किया गया है – "In the widest sense of word, conflict is conscious competition and competitors become self conscious rivals, opponents or enemies."[8]

इसके अनुसार सामाजिक संघर्ष में प्रतियोगियाँ जान बूझकर संघर्ष में भाग लेते है । इसमें दोनों प्रतिद्वन्द्वियों एक दूसरे से जान-पहचान कर विरोधी या शत्रु बन जाते हैं ।

व्यक्ति और अन्य व्यक्ति से व्यक्ति और प्रकृति, व्यक्ति और धर्म से व्यक्ति और आर्थिक व्यवस्था से, व्यक्ति और राजनीति से व्यक्ति और परिवार या पड़ोसी से करने वाले सब संघर्ष सामाजिक संघर्ष का आधार बन जाते हैं ।

Conflict is acute where change is swift and here the vested interest and sentiments of the old order stand out against eager pressure from the new.

परिवर्तन की तीव्रता संघर्ष को उत्कट बनाती है और पुरानी परंपरायें, रूढ़ियाँ नई प्रवृत्तियों के दबाव के होते हुए भी अपना अस्तित्व रखती हैं ।

२.२.३ संघर्ष की धर्मशास्त्रीय दृष्टि

धर्म की प्रवृत्ति इस जगत को मिथ्या और ईश्वर को सत्य मान कर चलती है । विश्व के प्रमुख धर्म हमें यह निर्देश देते हैं कि जीवन की सर्वश्रेष्ठता को प्राप्त करने के लिए जीवन से मोह त्यागना ही सबसे बड़ा मार्ग है । सर्वश्रेष्ठ जीवन को सोचते ही मानव कई मोहों से लिपटे जाते हैं । जब जगत् के प्रति मोह रखने और उसे अपनाने की स्थिति में न होता है और न उसे त्यागने की स्थिति में तब उसके सम्मुख जिस अस्पष्ट और उलझी हुई मानसिक स्थिति का उदय होता है वही स्थिति को संघर्ष कहते है ।

Encyclopaedia of Religious Knowledge में इस स्थिति को व्यक्त किया है – The co-incidence of ethical demands which exclude each other and thus excite a conflict in the person whose actions they claim. अर्थात् जब कुछ परस्पर विपरीत नैतिक माँगें एक साथ प्रस्तुत होकर व्यक्ति से अनुपालन की अपेक्षा करती है, तब नैतिक संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है । इस स्थिति में कर्म करना ही प्रत्येक मानव का लक्ष्य है और उसके फल का आशा नहीं । इसलिए आचार्य मनु धर्म को कर्तव्य मानते हैं । सुमनमेहरोत्र ने अपनी किताब हिन्दी कहानियों में द्वन्द्व कर्तव्यों के आधार पर तीन प्रकार के संघर्ष की स्थितियाँ व्यक्त की हैं ।

१. कर्तव्य तथा व्यक्तिगत अभिरुचियों में संघर्ष
२. ठोस कर्तव्य तथा सामान्य नैतिक दायित्व में संघर्ष
३. ठोस कर्तव्य और कर्तव्य में संघर्ष

२.३ संघर्ष के विभिन्न प्रकार

संघर्ष की परिभाषाओं से एक बात स्पष्ट है कि संघर्ष में दो विरुद्ध शक्तियों की आवश्यकता है । इन विरुद्ध शक्तियों में ज़रूर एक व्यक्ति या व्यक्ति की किसी संवेदना होगी। उदाहरण के लिए व्यक्ति और अन्य व्यक्ति से, व्यक्ति और प्रकृति से, व्यक्ति और धर्म से, व्यक्ति और आर्थिक व्यवस्था से, व्यक्ति और राजनीति से, व्यक्ति और किसी समाज से, व्यक्ति और परिवार से, व्यक्ति और संवेदनाओं से संघर्ष करता है । इन संघर्षों में कुछ न कुछ आंतरिक होते समय कुछ बाह्य होते हैं । इनमें मल्लयुद्ध, मार-पीट, किसी की जायदाद को हानि पहूँचाना आदि भी आते हैं । लेकिन इन दोनों संघर्षों में आंतरिक संघर्ष के बिना कुछ नहीं हो सकता है । कभी-कभी केवल आन्तरिक संघर्ष होते हुए भी बाहर उसकी प्रतिक्रिया प्रकट हो जाती है। इसलिए आन्तरिक और बाह्य संघर्षों के बीच जो भेद-भाव है वह केवल प्रतिपादन की दृष्टि में है ।

संघर्ष की स्थिति और मात्रा के अनुसार संघर्ष को विभिन्न रूपों में बाँटा जा सकता है ।

प्रत्यक्ष संघर्ष :- यह उपन्यास तत्वों के साथ एक स्पष्ट तत्व ही होता है । ऐसी उपन्यासों में संघर्ष की तरीका, कारण, विरुद्ध पक्ष, आरंभ कहाँ से है, अंत कैसे होंगे यह सब पाठकों को सीधे उपन्यास पढ़ने से ही समझ सकते हैं । प्रेमचन्द कालीन उपन्यासों में ऐसे संघर्षों को हमें देखने को मिलते है ।

प्रच्छन्न संघर्ष :- यह उपन्यास का रीढ़ होता है । ऐसी उपन्यासों में पाठकों को संघर्ष की शुरुआत और संघर्ष का बाह्य रूप देखने को नहीं मिलते है । यह कथानक के आरंभ से अंत तक माला के धागा सा अदृश्य रहता है । लेकिन अंत में पाठक समझ सकते हैं कि पूरे कथानक संघर्ष के रास्ते में ही चलते हैं ।

दीर्घकालिक संघर्ष :- उपन्यास के आरंभ से अंत तक इस संघर्ष का विकास हमें देखने को मिलते हैं । साधारण मानव का अवचेतन मन हर पल विभिन्न विचार विमर्श की रणभूमि ही रहता है । उसके समान उपन्यास के हर पहलू विभिन्न संघर्षों की श्रृंखला है । संघर्षरत मन ज़िन्दा रहने का लक्षण है जब संघर्ष समाप्त हो जाता है तब मृत्यु संभव हो जाती है। इसी तरह दीर्घ कालिक संघर्ष पाठकों के मन में दीर्घकाल तक रहते हैं ।

तात्कालिक संघर्ष :- उपन्यास को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए तात्कालिक संघर्ष की आवश्यकता है । लेकिन तात्कालिक संघर्ष से मात्र उपन्यास को आगे बढ़ाना मुश्किल है । इसलिए इसको दीर्घकालिक संघर्ष के बीचों बीच उपन्यास में उपयुक्त करता है । यह पाठक का उद्वेग को ऊपर उठाता है । और पात्र, वातावरण आदि का वर्तमान स्थिति का जानकारी देता है । प्रच्छन्न संघर्ष वाला उपन्यास में दीर्घकालीन संघर्ष प्रच्छन्न और तात्कालिक संघर्ष प्रत्यक्ष होता है । प्रत्यक्ष तात्कालिक संघर्ष से उपन्यासकार पाठकों को उपन्यास के दीर्घकालिक संघर्ष से संबंध जुड़ाता है ।

अनेक व्यक्तियों से एक समाज की उत्पत्ति होती है । इन अनेकों को बाँध रखने के लिए समाज में कई व्यवस्थाएँ है । हर व्यक्ति के मानसिक पटल विभिन्न इच्छाओं का वासस्थान है । इन इच्छाएँ नियंत्रणातीत होते समय एक दूसरे की इच्छाओं से टकराने की

अवस्था अविर्भूत हो जाती है । यह समाज की समतुलित व्यवस्थाओं में संघर्ष पैदा करता है। यह संघर्ष व्यक्ति और व्यवस्था के बीच होने के कारण समाज पर इसका प्रभाव पड़ता है । मन कई इच्छाओं भंडार होने के कारण सब कुछ साकार करना असंभव होगा । इसलिए मानव आंतरिक और बाह्य प्रतिक्रियायें समान नहीं होती । कभी-कभी आन्तरिक मन बाह्य व्यवस्थाओं जैसे आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक व्यवस्थाओं से किसी न किसी रूप में संघर्ष करना ही पड़ता है । ऐसे मानव का वैयक्तिक और व्यावहारिक प्रतिक्रियाओं में बहुत बड़ी फर्क होने के कारण संघर्ष को इसके आधार पर दो भागों में आन्तरिक और बाह्य संघर्ष के रूप में बाँटा है ।

२.३.१ बाह्य संघर्ष

१. **सामाजिक संघर्ष :-** सामाजिक संघर्ष और साहित्य दोनों अन्योन्याश्रित तत्व है । पौराणिक काल से ही साहित्यकार मानव जाति की, समाज की, सभ्यता की विशिष्ट स्थिति का आघात से सृजन की ऊर्जा प्राप्त करते थे । उदाहरण के लिए कालिदास की रचना 'रघुवंश' की प्रेरणा सीधे इक्ष्वाकु वंश के इतिहास से ही मिली होगी । इसी तरह 'रामचरिमानस' में उस रचनाकाल की भारतीय परिस्थिति दृष्टिगोचर है ।

जनतंत्र और जनतांत्रिक भावनाओं के प्रसार होने के कारण साधारण जनता का महत्व बढ़ता गया है । वैज्ञानिक मनोवृत्ति ने यान्त्रिक जनता को जन्म दिया । उनके मन में धार्मिकता और सामाजिक रूढ़ियों के प्रति अविश्वास एवं विद्रोह की भावनाएँ थी । रचनाकार व्यक्तिगत विद्रोह को वाणी देकर उन रचनाओं से उस समान मतवाला समाज का प्रतिनिधि बन जाता है । "आत्मपरक लेखक प्रायः स्वयं समाज की रूढ़ियों का शिकार और उनके प्रति व्रिदोही होता है ।"[9] ऐसे मुखौटे लगाकर जीवन की दूसरी मान्यता में जीने वाले मानव को समाज से संघर्ष करना ही पड़ता है ।

पुराने धार्मिक और नैतिक मूल्यों और पीछे पड़े गए परिवेश आदि को पूरी तरह इनकार करने के बिना उनमें से भी ऊर्जा प्राप्त कर एक नए समाज का निर्माण करना चाहिए । यह कहने में सरल हो तो करने में उतना सरल नहीं । इसलिए ऐसी नई विचारधारा को कमाने के लिए एक संघर्ष अनिवार्य है ।

२. **पारिवारिक संघर्ष :-** यह केवल वैयक्तिक नहीं । समाज और व्यक्ति के विभिन्न संघर्षों के प्रभाव परिवार में झलकता है । परिवार समाज का एक छोटा सा इकाई है । बदलते वैज्ञानिक, आर्थिक, सामाजिक परिस्थितियों के आकार में बदलाव होते ही रहते है । यह पारिवारिक व्यवस्था और सदस्य की आर्थिक स्थिति को मज़बूत कर दिया लेकिन पारिवारिक संबंधों में दरार लगाने के लिए यह कारणीभूत हो गया । माँ-बाप, भाई-बहन, पति-पत्नी के संबंध में जो आदर्श थे वे सब बुजुर्गों के अभाव से नष्ट होने लगा । जनता धन, संपत्ति के पीछे भागते ही रहते हैं इसके बीच उनको जीने के लिए समय नहीं मिलते हैं । आर्थिक मूल्य के सामने बाकी सब मूल्यों का सिर झुक गई । आदर्शहीन और मूल्यहीन परिवार में जीने के लिए लोग मुखौटे पहनने लगे । इन मुखौटों के पीछे सदा संघर्षभरित मानस से लोग जीते ही रहते हैं ।

पारिवारिक संघर्षों के कई नमूने हमें उपन्यासों में देखने को मिलते हैं । व्यक्ति समाज से अधिक परिवार में आज़ादी चाहता है । लेकिन आज की परिस्थिति में व्यक्ति अपने मन से भी मुखौटे के बिना बात करने के लिए असमर्थ है ।

३. **आर्थिक संघर्ष :-** आर्थिक संघर्ष मूल्य परिवर्तन से उत्पन्न एक समस्या है । प्राचीन भारतीय संस्कृति धन को अन्य मूल्यों को तुलना करते समय सर्वोत्कृष्ट नहीं मानता था । विदेशियों के आगमन के बाद खेती-बारी से कार्यालयी कर्मचारी के परिवर्तन काम को केवल धनागमन का मार्ग मानने का कारण बन गया । जनता अमीर और गरीब दोनों विभागों में बाँटा

गया । अमीर और अमीर बनने की कोशिश में रहे । गरीब अमीर बनने की कोशिश में लगे। बढ़ती हुई धनराशियों ने जनता को इच्छाओं के पीछे दौड़ा दिया । परिमित परिस्थितियाँ पूरी इच्छाओं को सफल बनाने के लिए अपर्याप्त रहे । इच्छा पूर्ती के लिए भागते-दौड़ते अमीरों के पैरों के नीचे गरीबों की इच्छाएँ छिन्न-भिन्न हो गई । इन दोनों के बीच मध्यवर्ग अमीरों के समान स्वप्न देखकर गरीबी जीवन बिताते हैं । ऐसे समाज में अमीर, गरीब और मध्यवर्ग एक साथ आर्थिक संघर्ष की चक्कर में पीसता हुए दुःखी रहते हैं ।

आर्थिक संघर्ष भी अन्य संघर्षों के समान समाज के विभिन्न संघर्षों के कारण है । इसलिए आधुनिक साहित्य में यह एक सशक्त प्रेरणा के रूप में देखने को मिलते हैं ।

४. राजनैतिक संघर्ष :- आधुनिक काल की चर्चित समस्याओं में राजनैतिक संघर्ष का महत्वपूर्ण स्थान है । राष्ट्र की अभिवृद्धि और उससे उन्नति के लिए राजनीति का आयोजन किया गया है । भारत जैसे गणतंत्र राष्ट्र में राजनीति से कई समस्याओं को समाधान प्राप्त हुआ है । लेकिन हर व्यवस्था के समान राजनीतिक व्यवस्था में कहीं न कहीं दरार पड़ गया है । राजनीति से अस्वस्थ मानव के मन में कई तरह के संघर्ष उत्पन्न होते है । राजनीतिज्ञ अपने अधिकार से जेब भरने का विधान समझने से इस स्तर में उथल-पुथल शुरू किया था । राजनैतिक संघर्षों के कारण नेता लोगों की स्वार्थप्रियता, पदलोलुपता, आचरणहीनता आदि है । इससे अस्वस्थ जनता की प्रतिक्रियाओं में तनाव, संघर्ष, आत्महत्या आदि देखने को मिलते है ।

५. धार्मिक और नैतिक संघर्ष :- पुरातन भारतीय संस्कृति धर्म को कर्तव्य, नियम, न्याय, गुण आदि मानते थे। उस समय लोग धार्मिक और नैतिक मूल्यों से हटने से डरते थे । ब्रह्माण्ड ईश्वर के नियंत्रण में है यह विश्वास जनता को गलतियों से दूर रखती थी ।

औद्योगीकरण और वैज्ञानिक प्रगति ने जनता को ईश्वर से अलग कर दिया । उनके मन में ईश्वर और धर्म के प्रति होने वाली कर्तव्य भावना का शोषण हो चुका । धर्मान्धता और अनाचार को जगह मिली । धर्म और नीति बदलने लगी । यह बदलाव उपन्यासों में भी प्रकट हुए । प्रेमचन्द कालीन उपन्यासों में चर्चित धार्मिक नैतिक मूल्य आज के उपन्यासों में नहीं है । अनाचार, धर्मान्धता, कर्तव्यमूढ़ता आदि से उत्पन्न धार्मिक और नैतिक संघर्षों को कोई कमी नहीं ।

२.३.२ आन्तरिक संघर्ष या आत्मसंघर्ष

वैयक्तिक संघर्ष भौतिक जगत के प्रभाव से उत्पन्न होता है । ऐसे संघर्षों की परस्पर विरोधी भावनाएँ एक ही व्यक्ति के मस्तिष्क में उठकर उनके मानसिक पटल को मंथन करती हैं । यहाँ व्यक्ति का संघर्ष वही व्यक्ति से है । यह आधुनिक समाज में अधिक प्रबल संघर्ष है । आज मानव स्वार्थता के कारण ईश्वर को भी नहीं मानते है । आज अहंभावना को अधिक स्थान है । जब व्यक्ति के अहं में स्वयं की विचारधारा से या अन्य किसी प्रेरणा से आघात पहुँच जाता है तो वह संघर्षशील हो जाता है । सामाजिक व्यवस्थाएँ और अहं भावनाओं के बीच संघर्ष हो जाता है । व्यक्ति अपने अतीत के प्रति और वर्तमान के प्रति भी क्षुब्ध होता है । वर्तमान के प्रति सजग और निर्विकार इन दोनों प्रकार के लोग अन्दर ही अन्दर संघर्ष करते है । आत्मसंघर्ष का विस्तार परपीडा या स्वपीडा से होता है । कलाकार बाह्य या आन्तरिक संघर्ष से उत्पन्न संवेदनों को कला के रूप में अभिव्यक्त करते है । इन अभिव्यक्तियों से जन सामान्य को भी संघर्ष का प्रभाव महसूस कराता है ।

१. **अस्तित्ववादी संघर्ष :-** हर व्यक्ति के अन्दर अपने अस्तित्व को बनाए रखने की इच्छा

होती है । प्रेमचन्द काल में अस्तित्व समाजगत और जातिगत मानते थे । आज व्यक्ति समाज और जाति से भी अलग होकर एक विशिष्ट अस्तित्व रखना चाहता है । आधुनिक संदर्भ में अस्तित्व का दायरा कम होकर 'इनर सेल्फ' अथवा मानसिक भावना तक हो गया है । वैयक्तिक भावनाएँ सामाजिक मूल्यों के रास्ते से अलग हो जाते समय व्यक्ति मुखौटे पहनने के लिए मज़बूर हो जाता है । इन मुखौटों के पीछे सामाजिक व्यवस्थाओं से संघर्ष करके व्यक्ति पूरा जीवन बिताता है ।

२. **हीनभावना के कारण संघर्ष :-** हीन भावना से उत्पन्न संघर्ष भी भौतिक तत्वों के प्रभाव से होते है । आर्थिक अभाव, सौंदर्य का अभाव, कुलमहिमा का अभाव, प्रेम में अतृप्ति, रोग पीडा आदि से मन में हीन भावना उत्पन्न होती है । वे समाज से पीछे हट जाते हैं । यह निराशा, कुण्ठा आदि का कारण भी होता है । ऐसी अन्तर्मुखी व्यक्ति का मन हर पल सबके आगे आने के लिए चाहते ही रहते हैं । लेकिन हीन भावना से उनके लिए यह असाध्य हो जाता है । ऐसे विरुद्ध भावनाओं के कारण व्यक्ति संघर्षरत होता है । दमित इच्छाएँ मनुष्य के अवचेतन मन में रहती है । अवसर मिलते समय यह बाहर आ जाती है । इसका कारण भूतकाल की किसी दर्दनात्मक या भीबत्सात्मक घटना और खोए हुए कोई सुन्दर सपना होते हैं । ऐसी संघर्षों का चित्रण आधुनिक उपन्यास में है । दमित कामवासना से उत्पन्न हीन भावना आत्मसंघर्षों में बहुचर्चित है ।

२.४ आत्म संघर्ष का उद्दीपन और भारतीय परिवेश

"जीवन की संघर्षपूर्ण परिस्थितियों के प्रति मानव प्रतिक्रिया करता है यह मानव का सविशेष व्यवहार है । मानव की किसी भी प्रतिक्रिया के पीछे उद्दीपक स्थिति है ।"[10] उद्दीपक परिवेश के अनुसार बदल जाते है । भारतीय परिवेश व्यक्तियों को कैसे संघर्षी बनाते

है इसके अध्ययन से हिन्दी उपन्यासों में चित्रित आत्मसंघर्ष और उसके उद्दीपकों की जानकारी हमें मिलती है ।

२.४.१ सामाजिक उद्दीपन

स्वतंत्रता के पूर्व भारत में पाश्चात्य एवं भारतीय चिन्तन के संक्रमण व्याप्त था । ऐसी परिस्थिति में पुरातन को छोडने और नूतन को अपनाने में संघर्षमयी स्थिति का उत्पन्न होना स्वाभाविक है । सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक सभी स्थितियों में पाश्चात्य चिन्तन का प्रभाव पडा। यह मूल्यपरिवर्तन का कारण बन गया । लेकिन भारतीय मूल्यों और पाश्चात्य मूल्यों के संक्रमण किस हद तक है इसमें स्पष्टता का अभाव भी उभर आया ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पुरानी और नवीन पीढी का द्वन्द्व, भारतीय और विदेशी चिंतन का द्वन्द्व, पूँजीवादी आर्थिक नीति, सरकारी कार्यालयों की वृद्धि, औद्योगिक विकास, शिक्षा प्रसार आदि ने भारतीयता में अध्यात्म के स्थान पर भौतिक जीवन दर्शन को महत्व दिया। आर्थिक स्थिति पर आधारित भौतिक जीवन ने समाज को विभिन्न वर्गों में बाँटा दिया। इससे मध्यवर्ग का आविर्भाव हुआ । आदर्शों, इच्छाओं, कल्पनाओं, आकांक्षाओं से मध्यवर्ग जिनके पूर्ण न होने पर निराशावादी हो गया । "अपने ही द्वारा निर्मित नैतिक मान्यताओं का विरोध करने में भी मध्यवर्ग छटपटाता है और पहल करता है । इस चिन्तन ने न केवल मध्यवर्ग को प्रभावित किया बल्कि समाज के प्रत्येक क्षेत्र, साहित्य और संस्कृति को भी प्रभावित किया है ।"[11]

औद्योगीकरण, मशीनीकरण और शहरीकरण से पूँजीवाद बढा । पूँजीवादी समाज का विकास गरीबी के विकास में कोई कमी नहीं किया । लेकिन इसके बीच मध्यवर्ग

को पूँजीवाद और गरीबी के बीच उलझना पडा । शिक्षित युवकों बेरोज़गारी के कारण विद्रोही बन गए । पूँजीपतियों ने इन शिक्षक युवालोगों को शोषण के विविध शक्लों से मोहित किया । मोहभंग उन लोगों को तस्करी, मुनाफाखोरी और काला बाज़ारी के लिए आकृष्ट बना देते हैं । चोरी और भ्रष्टाचार के प्रति शिक्षित लोगों के ऐसे दृष्टिकोण पूरे समाज में निर्लज्जता फैलाने का कारण बन गया ।

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज में आज प्राचीन व्यवस्थाओं के लिए कोई जगह नहीं । नव समाज परिवर्तन पर बल देते है। यह व्यक्तिवादी जीवन दर्शन का मार्ग प्रदर्शन करते है ।

२.४.२ पारिवारिक उद्दीपन

प्राचीन भारत में पारिवारिक संगठन को आधारभूत और अनिवार्य संस्था मानता था । प्रेम, सद्भावना, सहानुभूति आदि का ज्ञान व्यक्ति को परिवार से मिलता था । व्यक्ति के अन्दर जो सद्भावनाएँ थी वह धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक तल तक व्यापृत थी । कार्षिक वृत्ति से जीवन संधान करने में संयुक्त परिवार का अंक कम नहीं था ।

ईस्ट इन्डिया कंपनी के आगमन से औद्योगीकरण की शुरुआत हुई । खेतीबाडी से जीवनोपार्जन पाने वाली जनता को शिक्षा देकर क्लर्क बना दिया । यह ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था को लोट-पलट कर दिया । बदलते परिवेश में किसानों, मज़दूरों और गाँवों को निराकर्षक बना दिया । कृषकों की संख्या की कमी के कारण कृषि प्रधान देश भारत को अन्न के लिए विदेशों से सहायता माँगना पडा ।

बदलते गए अर्थ व्यवस्था और काम-काज की शैली से संयुक्त परिवारों का

विघटन हुआ । "स्वतंत्रता, वैयक्तिकता, अहम्वादिता, औद्योगीकरण, अर्थ-काम व्यवस्था से संयुक्त परिवारों का विघटन तो हुआ ही है, निजी सम्बन्ध भी मृत प्रायः हो गए हैं । माता-पिता, पति-पत्नी, भाई-बहन, पिता-पुत्र आदि सम्बन्धों में अनेक दरारें आ गई हैं । पति-पत्नी के बीच विश्वास की डोरी कसमसाने लगी है । सम्बन्धों में भावना की अपेक्षा धन, पद-प्रतिष्ठा अधिक महत्वपूर्ण हो गया है ।"[12]

आणविक परिवार व्यवस्था ने कुल मर्यादा को बिखरा दिया और यह वैवाहिक बन्धन में शिथिलता बढने का कारण बन गया । विवाह एक आर्थिक एवं प्रेम समझौता मात्र बन गया । उच्चशिक्षा और पाश्चात्य चिंतन के प्रभाव से नर नारियों ने पारिवारिक बन्धनों से छुटकारा पाकर साहसिक बन गये । नारी भी आर्थिक दृष्टि से सबल और स्वतंत्र हुई । यह परंपरागत पारिवारिक व्यवस्था की नींव प्रेम और सहानुभूति से अर्थ व्यवस्था में बदला दिया । आणविक परिवार की बढती हुई प्रवृत्ति ने शिक्षा और यान्त्रिकता मनुष्य को अकेला बना दिया।

भारतीय परिवेश की गरिमामयी परंपार और सभ्यता पर आग्रह रखकर पाश्चात्य आधुनिकता का अन्धानुकरण करने के लिए पुरानी पीढ़ी को मुखौटा पहनना पडती है। ऐसे अन्दर से परंपरा वादी और बाहर से आधुनिक बनने के कारण पारिवारिक संबंधों में बडे खाई बन पडी । नारी ने भी पुरुष के समान सर्वतंत्र स्वतंत्र बनने के लिए विवाह और परिवार जैसे प्राचीन संस्थाओं से विमुखता दिखलायी । स्वातंत्र्य की भावना ने अहम् भावना का उत्पादन किया । ऐसे परिवार में भी व्यक्ति अलग अलग व्यक्ति बन गये।

२.४.३ आर्थिक उद्दीपन

गाँवों में बसते भारतीय समाज का आर्थिक व्यवस्था किसानों और मज़दूरों के

हाथों में थी । अंग्रेज़ों ने कार्षिक वृत्ति से जनता का ध्यान मोडकर बन्धे फाइलों से बाँधा दिया। "भारतीय करघे, चरखे का व्यापार पूर्ण रूप से नष्ट कर दिया । भारत का कच्चा माल ब्रिटेन जाने लगा । ..... अंग्रेज़ों द्वारा न केवल भारत के परम्परागत उद्योगों का ही नाश किया गया, बल्कि ब्रिटीश साम्राज्य के खर्चों के लिए कर भी लगाए ।"[13] किसानों की आर्थिक स्थिति ज़मीन्दारी व्यवस्था और पाश्चात्य शासन से दिन पर दिन खराब होती जा रही थी । कारखाने खोलकर गाँव के किसानों को खेतों से दूर कर दिया । वे गाँव से ज़्यादा शहरों से प्रभावित हुए।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी भारतीयों को इस अर्थ व्यवस्था से मुक्ति नहीं मिली । पूँजीपति पहले अंग्रेज़ थे तो फिर वे स्वदेश के बन गए ।

शैक्षिक और वैज्ञानिक उन्नति ने समाज के अर्थ तंत्र बडे पैमाने में बदल दिया। गाँव गायब हो गया । शहरों में बस्तियों का आविर्भाव हुआ । भौतिक सुख साधनों को सुखलोलुपता का अंग मान लिया। मानसिक सुखों से दूर हो गया। धन से सब कुछ प्राप्त करने की इच्छा व्यक्ति के मन को मंथन कर दिया । नाम, सुख, ऐश्वर्य यह सब नए अर्थ व्यवस्था की माल है । अधिक धनोपार्जन के लिए मानव सदा संघर्षरत बन गए । प्रेम, सहानुभूति, भाईचारा, वैवाहिक संबंध यह सब धन की कसौटी से रूपायित किया । आर्थिक व्यवस्था के आधार पर समाज में वर्ग भेद की उपलब्धि हुई । एक ओर गरीबी में उलझे निम्न वर्ग दूसरी ओर धन और पद-लोलुपता में अन्धे उच्चवर्ग इन दोनों के बीच उन्नति अपनाने के लिए रास्तें ढूँढते फिरते मध्यवर्ग निराश थे ।

शिक्षा, तकनीकी व औद्योगिक विकास ने समाज की अर्थ-व्यवस्था पर व्यापक और गहरी प्रभाव डाली । आज अर्थव्यवस्था के आधार पर सब कुछ मोल तोल कर चुके है।

इसलिए मानव के मन की सहानुभूति, प्रेम, इच्छा, भक्ति यह सब आज धन से मिलने वाली माल बन गई । धन के अलावा कोई रिश्ता नाता नहीं । इसलिए आज मानव का मोल तोल धन से ही बन गए है ।

२.४.४ धार्मिक उद्दीपन

विदेशी शासन से पहले भारत का ढाँचा धर्म और संस्कृति पर आधारित था । धर्म और परंपरा नैतिकता को मोड देते थे । परन्तु विकासशील समाज में नैतिक मूल्यों और आदर्शों सदैव वैसे ही रूप में रहना असंभव है इसलिए धार्मिक और सांस्कृतिक परंपरा का अस्तित्व बदला गया । ऊँच-नीच की भावना प्रबल बन गयी । वर्ण व्यवस्था के निष्ठुर करों ने अस्पृश्यता को प्रोत्साहित किया । समाज में रूढि, परम्परा, रीति-रिवाज़ तथा धर्म के नाम पर कई कुरीतियाँ और कुनीतियाँ फैल गई । अशिक्षा जनता में संकुचित अंधविश्वासों का शाक्तीकरण का कारण बन गया । हर व्यक्ति अन्धे और बन्धे धार्मिक व्यवस्था से मुक्ति पाना चाहते थे । परंपरा से ओतप्रोत रूढियों से मुक्ति सरल नहीं थी । मुक्ति चाहने वालों को समाज विद्रोही मानते थे । धार्मिक नीतियाँ मानव के लिए ही बनाई गई है लेकिन जनता के लिए यह असह्य थी । ऐसी स्थिति में ईसाई और इस्लाम धर्म का आगमन हुआ । यह उच्च-नीचत्व के कट्टर नीतियों को प्रबल प्रहार किया ।

अंग्रेज़ों ने अशिक्षित भारतीयों को शिक्षा के प्रकाश से नए मूल्यों का रास्ता दिखाया । वहाँ धर्म और संस्कृति का कोई संबंध नहीं था । इसने भारतीयों को मूल्य परिवर्तन के लिए अग्रसर कर दिया । पाश्चात्य प्रभाव धार्मिक कुनीतियों एवं परंपरा की रूढियों को टालकर भौतिक संस्कृति का स्थापना किया । धर्म में संकीर्णता के आवरण को उतार कर तर्क

को स्थान दिया ।

राजाराम मोहन राय, केशवचन्द्र सेन जैसे महान व्यक्तियों और ब्रह्मसाज, आर्यसमाज आदि संस्थाएँ धर्म और नीति को सुधार करने में शामिल हुई । लेकिन यह सब शिक्षित वर्ग तक सीमित गई । गाँधीजी ने धर्म अैर संस्कृति की नैतिकता को समन्वित रूप प्रदान कर दिया ।

औद्योगीकरण एवं धर्म-निरपेक्ष शिक्षा ने जाति-पाँति को दूर कर दिया । लेकिन तब से ही वर्ग संघर्ष की शुरुआत हुई थी । नैतिकता का आधार धर्म, पुण्य और सद्भाव से बदलकर वर्ग और धन व्यवथा पर आरोपित कर दिया । "नैतिक मूल्यों की समस्या और भी विकट इसलिए हो गई है कि प्राचीन शास्त्रीय धार्मिक अथवा ईश्वर संभूत धार्मिकता इस युग में क्रमशः क्षीण होती जा रही है और नैतिकता का आधार एक मानव संभूत नीति में खोजा जा रहा है । जो दायित्व अब तक ईश्वर या धर्म पर था, वह अब मानव ने स्वयं ओढ़ लिया है ।"[14]

धार्मिक और नैतिक मूल्यों का परिवर्तन ने भारत के पारिवारिक बंधनों को उघडकर दिया । स्त्री-पुरुष संबन्धों में यौन संबन्धों की नैतिक रूढियों में परिवर्तन आया । श्लील-अश्लीलता की सीमा रेखा पहले से बिखर गयी । नवीन खोखले मूल्यों को महान मानकर जीनेवाले नवयुवकों में परंपरा का सशक्त मूल्यों की जानकारी संघर्ष पैदा करती है । जीवन की लंबे रास्ते से परंपरा का महत्व पहचानने वाली पुरानी पीढी नवयुवकों के नवमूल्यों के अन्धानुकरण को पूर्ण रूप से भर्त्सना करती है ।

२.४.५ राजनीतिक उद्दीपन

भारतीय राजनीतिक समस्याएँ राजनीति से ही पुरातन है । सामाजिक वर्ग संघर्ष

और अस्तित्व संघर्ष राजनीतिक संघर्षों का मूल कारण बन गये ।

अंग्रेज़ों के आगमन राजनीतिक व्यवस्थाओं में बडे बदलाव लाया । अंग्रज़ों के कठोर शासन के पुलिस के अत्याचार तथा सरकारी करों ने खेतीहीन किसानों को प्रताडित किया । इंडियन नेशनल कॉंग्रेस की स्थापना, सूरठ कांग्रेस, अधिवेशन आदि राजनीतिक परिवेश की सकारात्मक और नकारात्मक प्रगति का कारण बन गये ।

प्रथम विश्व युद्ध और रूसी क्रान्ति से प्रभावित भारतीय ने स्वराज्य प्राप्ति की आशा की । कांग्रेस ने सत्याग्रह आन्दोलन, ग्राम-पंचायतों का निर्माण, नमक कानून, कारा तोडो आन्दोलन आदि राजनीतिक परिवेश पर कई बदलाव लाए । गाँधीवादी विचारधाराएँ, क्रान्तिवादी विचारधाराएँ राजनीतिक स्तर पर दलों का आविर्भाव का कारण बन गयी । हिन्दु-मुसलमान सांप्रदायिकता ने राजनीतिक परिवेश को संघर्षमयी बना दिया ।

वर्ग संघर्षों से मार्क्सवाद का आविर्भाव भी हुआ । स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक परिवेश भारत-पाक विभाजन और हिन्दु मुस्लीम सांप्रदायिकता से संघर्षी राजनीतिक परिवेश जनता में अत्याचार, लूटमार, कत्ल जैसी घटनाओं से तीव्र बन दिया।

नव-युग का जीवन ने राष्ट्र को उन्नत बनाने का प्रयास किया । भारत की शासन व्यवस्था बदल गयी । शोषण का रूप पहले से बदल कर नये रूप धारण किए । नेता गण, पुलिस पदाधिकारी आदि व्यक्ति प्रधानता के कारण स्वार्थ बन गए । मुनाफाखोरी, खूस खोरी, काला बाज़ार, तस्करी आदि प्रवृत्तियाँ ने राजनीतिक व्यवस्था को चूर-चूर कर दिया ।

स्वतंत्रता के बाद नए संविधान हुआ । राज्यतंत्र में चुनाव और नए-नए नियमों का निर्माण हुआ । स्वातंत्र्य प्राप्ति के पहले विदेशियों के अत्याचारों से निस्सहाय भारतीयों को

और फिर स्वदेशी नेताओं के स्वार्थों को भी भोगना पडा ।

२.४.६ वैयक्तिक उद्दीपन

वैयक्तिक संघर्ष, पूर्ण रूप से बाह्य संघर्ष नहीं । बाह्य संघर्षों को वैयक्तिक संघर्ष और वैयक्तिक संघर्ष को बाह्य संघर्ष का कारण बन सकता है । इसलिए इन दोनों प्रकार के संघर्षों को परस्पराश्रित संघर्ष कहा जा सकता है

सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक, धार्मिक, राजनीतिक संघर्ष व्यक्ति संघर्ष का कारण कैसे बन जाते इसका अध्ययन ज़रूर होना चाहिए । इसके लिए मनोविज्ञान से सहारा लेना चाहिए। फ्रायड के अनुसार समाज तथा व्यक्ति की समस्याओं के मूल में अतृप्त काम वासना को स्वीकारते हैं । मार्क्स ने लिखा है "व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है । जिसका जीवन सामुदायिक जीवन के रूप में चाहे पुष्ट न हो, फिर भी वह सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति और पुष्टि ही है ।"[15] इसी कारण से व्यक्ति को अपने वैयक्तिक रूप में निजी होते हुए भी सामाजिक नियमों को पालन करना पडता है । इन नियमों को व्यक्ति अपने विचारों, मान्यताओं, आदर्शों और रीतियों द्वारा निर्माण करता है । लेकिन व्यक्ति की परिवर्तनशीलता स्वयं निर्मित नियमों को तोड मोड करती है । चिन्ताधारा और नियमों के परिवर्तन की तीव्र गति व्यक्ति के मानसिक संघर्षों को तीव्र बनाती है ।

पुरातन भारतीय समाज में व्यक्ति आज के समान महत्वपूर्ण नहीं था। आर्थिक और शैक्षिक धरातल का बदलाव ने व्यक्ति के सामाजिक बन्धन को शिथिल कर दिया । अनुसंधान और स्वतंत्र चिन्तन ने मानसिक पटल को झकझोर कर दिया । मानव पहले से ज़्यादा अहमवादी बन गया । परंपरागत मूल्यों से दूर मानव को आधुनिक मूल्यों ने इच्छाओं, आकाँक्षाओं, आशाओं, अपेक्षाओं से भरपूर कर दिया । संयुक्त परिवार की बन्धे मानसिकता से

आणविक परिवार के खुले वातावरण पर आते मानव की मानसिकता स्वार्थ भावनाओं से बन्धनयुक्त हुई । इसलिए व्यक्ति अधिकता विद्रोही बन गया । इस विद्रोह की आवाज़ कभी कभी बाह्य वातावरण में खामोशी है तो अन्तर्मन में कोलाहल मचाती है । व्यक्तिवादी जीवन दर्शन पाश्चात्यों का प्रभाव है । व्यक्तिवाद में व्यक्ति सबसे ऊपर है । हर व्यक्ति समाज की गतिविधियों को अपने विचार और दृष्टिकोण से देखता है । इसलिए यहाँ समाज और परिवार जैसे संयुक्त संस्थाओं पर कोई आस्था नहीं है । व्यक्ति स्वयं अहं का स्वातंत्र्य चाहते है । उसके सामने और कोई चीज़ बाधा नहीं है । "अहं भावना से समन्वित व्यक्तिवाद जीवन दृष्टि को संकीर्ण कर देता है, अन्तर्मुखता को जन्म देता है । और इस तरह से आत्म-पलायन का पोषण करता है । संकीर्ण अहं से प्रेरित व्यक्तिवाद ध्वसोन्मुखी प्रवृत्ति का परिचायक है ।"[16]

व्यक्तिवाद के अलावा अस्तित्ववाद भी व्यक्ति के संघर्षों का कारण बन जाते है । अस्तित्ववाद में व्यक्ति अपने अस्तित्व की स्थापना को महत्वपूर्ण मानते है । इसकी स्थापना के लिए व्यक्ति संघर्ष भी करते है । इसके अनुसार समाज व्यक्ति के लिए है । इसलिए वे व्यक्ति के अनुसार समाज को बदलाना चाहते है। इसके लिए कभी कभी ईश्वर के सहारा लेते है तो कभी कभी ईश्वर की मृत्यु की घोषणा भी करते है ।

अस्तित्ववाद में व्यक्ति हर क्षणों को महत्वपूर्ण मानते है । हर क्षणों में अस्तित्व का पुनःसृजन करते है । यह दुःखपूर्ण अस्तित्व का कारण बन जाते है । अस्तित्ववाद में मृत्यु और निराशा को महत्वपूर्ण स्थान है ।

२.५ कलाकार और आत्मसंघर्ष

स्वातंत्र्योत्तर समाज में व्यक्ति समाज से अपने अतीत से असंतुष्ट, भविष्य के

प्रति आश्वस्त और मोहभंग के वर्तमान में ज़िन्दगी से संघर्षरत होकर जीता है । ऐसी स्थिति अत्यंत सहज और संवेदनशील कलाकार के मानसिक पटल को प्रभावी बनने में आश्चर्य की बात नहीं । लेकिन कलकार मानस के चेतन, अचेतन और अन्तरचेतन पटलों से अवगम अैर अवगाहन करने में समर्थ होता है । जिन समाज से बचकर कला कृति का निर्माण असंभव है।

कलकार के अन्तर्मन में समाज के समस्याओं का प्रभाव कहाँ तक गहरा होता है उतना ही गहराई से आत्मसंघर्ष का आविर्भाव होता है । संघर्ष कला की शक्ति का आदि स्रोत है । इसलिए कलाकार को अंतसंघर्षों से मुक्ति संभव नहीं है ।

एक कलाकार होने का कारण परिस्थिति नहीं मनःस्थिति है । एक साधारण व्यक्ति आर्थिक सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार जी कर सकते है लेकिन कलाकार, बिना कोई कमियों के वातावरण में भी मानसिक संघर्षों के शिकार होते है । होमर ने कला को अलौकिक उन्माद और देवी प्रसाद माना था । इसी तरह कलाकार साधारण मानव की मानसिक स्थिति से थोडा और उन्मादी होते हैं ।

संदर्भ सूची

1. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी – आधुनिक साहित्य – पृ. ४५६
2. डॉ. रा भुपटकर – हिन्दी और मराठी के ऐतिहासिक नाटक तुलनात्मक विवेचन – पृ. २६-२७
3. डॉ. श्यामसुन्दर दास – हिन्दी शब्द सागर (पाँचवाँ भाग) – पृ. २४०१
4. सं नगेन्द्रनाथ बसु – हिन्दी विश्वकोष – पृ. ७५५
5. सं. मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव – ज्ञान शब्द कोष – पृ. ३७५
6. सं. कालिका प्रसाद, राजवल्लभ और मुकुन्दी लाल – बृहद हिन्दी कोष – पृ. ६५५
7. डॉ. मंजुला गुप्ता – हिन्दी उपन्यास समाज और व्यक्ति का द्वन्द्व – पृ. ३८
8. Soligman & Jhonson -- Encyclopaedia of Social Science -- P. 194-195
9. डॉ. सुमन मेहरोत्रा – हिन्दी कहानियों में द्वन्द्व – पृ. ३७
10. डॉ. नकेन्जक मोहन, डॉ. देवेन्द्र इस्तर – संघर्ष, परिवर्तन और साहित्य – पृ. १४२
11. डॉ. मंजुला गुप्ता – हिन्दी उपन्यास समाज और व्यक्ति का द्वन्द्व – पृ. २१
12. वही – पृ. १४
13. वही – पृ. १७
14. अज्ञेय – आत्मनेपद – पृ. १९६
15. डॉ. कुँवरपाल सिंह – हिन्दी उपन्यास सामाजिक चेतना – पृ. १७
16. डॉ. देवेश ठाकुर – नदी के द्वीप की रचना प्रक्रिया – पृ. १०७

अध्याय – ३

हिन्दी साहित्य में कलाकार की प्रस्तुति - एक सर्वेषण

कलाकार एक संपन्न समाज की दौलत है । वे समाज के निर्माण और पुनर्निर्माण करते हैं । कलाकार केवल वर्तमान में नहीं भाविकाल और भूतकाल में अपनी भावना के सहारे जीते हैं । अपनी कलाकृतियों से साधारण पाठकों को भी वे इन त्रिलोक संचार सवार करा देते हैं । एक स्पष्ट कलाकार का जीवन काल साधारण व्यक्ति से अधिक होता है । वह धरती पर जीने के बाद भी अपना अस्तित्व यहाँ छोड़कर जाते हैं । सांसारिक जीवन के बाद भी लोग कुछ कलाकारों के जीवन से ऊर्जा पाकर समाज की परिकल्पना करते हैं ।

पहले अध्याय में कला के विभिन्न विभागों के बारे में विस्तार से विचार किया गया है । उसमें साहित्य का स्थान ललित कला के अंतर्गत आता है । विद्वानों ने ललित कला के अंतर्गत काव्यकला, संगीतकला, नाट्यकला, चित्रकला, मूर्तिकला और स्थापत्य कला को स्थान दिया है । कलाओं का वर्गीकरण उनकी प्रस्तुति के माध्यम के अनुसार होते है । इसके अनुसार संगीतकला नाद से, नाट्यकला ताल और रस से, चित्रकला रेखा और वर्ण से, मूर्तिकला मिट्टी, पत्थर और तरु से, स्थापत्य कला निवास, स्थान और मंदिर से प्रस्तुत करती है । इन सब कलाओं में से माध्यम की अमूर्तता के कारण काव्य कला सर्व प्रमुख मानती है । भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार काव्य कला का माध्यम शब्द और अर्थ है । शब्दों से उत्पन्न अर्थों और भावों से काव्य की अभिव्यक्ति होती है ।

काव्यकला को 'साहित्य' का नामकरण सर्वप्रथम राजशेखर के 'काव्य मीमांसा' में हुआ । उसमें काव्य तथा काव्य शास्त्र के अर्थ में क्रमशः साहित्य एवं साहित्य विद्या शब्द

का प्रयोग किया । इस शब्द की व्युत्पत्ति 'सहित' से हुई है । आरंभ में साहित्य शब्द का अर्थ वाचक शब्द और वाच्य अर्थ का संयोग मात्र था । साहित्य शब्द पहले किसी भी प्रकार की भाषिक अभिव्यंजना में शब्द और अर्थ के अनिवार्य व्याकरणिक तथा युक्ति युक्त संबंधों का द्योतक था । वह कालान्तर में उन तत्वों का वाचक हो गया ।

भोज ने साहित्य शब्द की परिभाषा करते हुए कहा है कि – "साहित्य शब्द और अर्थ का संबंध होता है ।" साहित्य गद्य और पद्य रूप में प्रस्तुत करते है । पद्य के अंतर्गत कई प्रकार की कविताएँ कालानुसृत उत्पन्न हुई । आधुनिक युग में आविर्भूत गद्य साहित्य आज बृहत् शाखाओं से समृद्ध है । इसमें कहानी, उपन्यास और नाटक को प्रमुख मानते हैं ।

साहित्य का केन्द्रबिन्दु मानव है और मानव जाति के उचित अध्ययन की सर्वप्रमुख विषय वस्तु साहित्य ही है । साहित्य मानव जीवन के गद्यात्मक सौन्दर्य की भावात्मक अभिव्यक्ति है ।

३.१ हिन्दी के प्रतिनिधि कविताओं में कलाकार की प्रस्तुति

जो व्यक्ति अपनी अनुभूतियों को सुन्दर, विलक्षण, व्यंजनात्मक रूप में अभिव्यक्त कर लेते हैं वे कवि हैं, क्योंकि उनकी अभिव्यक्ति साधारण जन से भिन्न होती हैं । पुराने ज़माने में काव्य को अमृत के समान मानते थे । यह पाठकों के अन्तःकरण में चतुर्वर्ग फलस्वाद से भी बढ़कर आनन्द उत्पन्न करने वाला होता है ।

काव्य कला का आरंभ कब से हुई इसके बारे में एक व्यक्त जानकारी नहीं है । लेकिन हिन्दी काव्य धारा का परिचय भक्तिकाल से शुरू होते हैं । फिर भी भारतेन्दु युग से इसको एक नया रूप और भाव मिला है ।

'हिन्दी कविताओं में कलाकार की प्रस्तुति' नामक विषय के अध्ययन के लिए हिन्दी कविता जगत् की चार कविताओं को मैंने चुना है । वे सूर्यकान्त्र त्रिपाठी 'निराला' की 'तुलसीदास', हीरानन्द सच्चिदानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' का 'असाध्यवीणा', नागार्जुन की 'कालिदास' और सुदामा पाण्डे 'धूमिल' की 'मैं हूँ' हैं । इनमें निराला और नागार्जुन दो प्राचीन कवि प्रमुखों को आधार बनाकर रचना की हैं तो अज्ञेय और धूमिल पूरे कलाकार की मानसिकताओं को केन्द्र में रखकर रचना की है ।

३.१.१ तुलसीदास – ऐतिहासिक कलाकार पर एक नई दृष्टिकोण

निराला जी हिन्दी के युगान्तरवादी कवि हैं । छायावादी कवि चतुष्टय में उनका महान स्थान है । उनकी कविताओं में नवजागरण का सन्देश प्रगतिशील चेतना तथा राष्ट्रीयता का स्वर है । 'तुलसीदास' निराला जी की श्रमसाध्य कला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है । गोस्वामी तुलसीदास हिन्दी के ऐसे कवि है जिन्होंने अपनी काव्य रचना का मूल उद्देश्य लोकमंगल का विधान करना, स्वीकार किया है । आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने तुलसी को महान लोकनायक मानते हुए लिखा है – लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय कर सके । तुलसी का संपूर्ण काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है ।

निराला जी की 'तुलसीदास' नामक कविता की मूल समस्या पतनोन्मुख संस्कृति की सुरक्षा है । तुलसीदास का दाम्पत्य जीवन से जुड़ी हुई कहानी के माध्यम से मध्यकालीन समाज का सामाजिक पतन और उससे मुक्त होकर पुनर्जागरण का महत्वपूर्ण चित्रण हुआ है । इसमें तुलसीदास के अंतर्द्वन्द्व का चित्रण है । वे साधना से समाज को मुक्त करना चाहते हैं, लेकिन मन की दुर्बल वासना इसमें बाधक होती है । निराला जी तुलसीदास को पूरा समाज

का प्रतीक के रूप में चित्रित किया है । 'रत्नावली' में उनकी आसक्ति व्यक्तिगत कामुकता न होकर सामाजिक ह्रास का प्रतीक बन जाती है । चित्रकूट से वे जो संदेश सुनते हैं उससे भारतीय संतों के ज्ञान-नेत्र खुलते हैं । निराला जी 'रत्नावली' के माध्यम से कहते हैं कि तुलसी को नहीं वरन् साहित्य और संस्कृति की समस्त रीतिकालीन परंपरा को धिक्कारा गया है । उसके योगिनी रूप में मध्यकालीन नारी का नायिका भेदवाला रूप जलकर भस्म हो गया है ।

"आरंभ में शताब्दियों के सांध्यकाल का चित्रण किया गया है । बादलों की तरह भवें टेढी किये यह सांध्यकाल भारत के आकाश पर छाया हुआ है । पंजाब, कोसल, बिहार धीरे-धीरे सभी प्रान्त कालिमा के नीचे आ गये । मूसलाधार वर्षा से मुगलों और पठानों के आक्रमण की तुलना सांध्यकाल की पृष्ठभूमि में सार्थक बैठती है । बादलों के दुंदुभी और वज्रपात, नीचे तीव्र गति के जल प्रवाह ये सब उस समय की क्लिष्टताओं के समान है । बुन्देलखंड, कालिंजर आदि का पूर्व गौरव नष्ट हो गया है ।"[1] जो सच्चे राजपूत थे वे स्वर्ग गये; जो रह गये हैं, वे नृपवेश सूत बन्दीगण हैं । वीर बन्दी बने हुए हैं और जो लोग राजकार्य करते हैं वे सब स्वार्थी बनकरआनंद मना रहे हैं । वे अपनी इच्छा पूर्ती के लिए आक्रमणकारियों का कीर्तिगान करते ही रहते हैं । जातीय जीवन की नदियाँ एक नई संस्कृति के सागर की ओर बह रही है ।

मूसलाधार वर्षा के बाद धरती पर शांति छा गई । सुखद शांत हवा सबको प्यार से छूने लगी । चन्द्रमा पृथ्वी को शीतल किरणों से चूम करने लगा । "संस्कृति का सूर्य डूबने पर सुन्दरियाँ अपने कर कुमुदों से समय की गति पर ताल देने लगीं ।"[2] पूरे संसार प्रकृति के शीतल छाया में मंत्रमुग्ध हो गया ।

इसी समय राजापुर में सुन्दर प्रतिभा और पुष्ट शरीर वाले युवक तुलसीदास,

काव्य शस्त्र का अध्ययन करके जीवन में प्रवेश कर रहे थे । एक दिन मित्रों के साथ वे चित्रकूट गये और वहाँ से उनके मन में कुंवर के भाव पैदा हुए । "जैसे उषा को कुहरे का जाल घेरे हो, उसी तरह प्रकृति भी एक ऐसी भाषा में बातें कर रही थी जो पूरी तरह समझ में न आती थी । तुलसीदास को अपने मन में संस्कारों का निःशब्द सागर दिखाई देता है जिसके उस पार सत्य की अस्पष्ट छवि दीख रही है ।"[3] प्रकृति सूरज के तीखे किरणों से तप रहा है । ऋतुएँ आती हैं, अपना प्रभाव छोड़कर चली जाती है; उन्हें उसके सुख-दुःख से ऐसे ही वास्ता नहीं है, जैसे पेट भरने वाले नालायक लोग देश में आते-जाते रहते हैं और सब अपने स्वार्थता के आगे उन्हें प्रजा के कष्टों का ध्यान नही रहता । जातीय संस्कारों की पृथ्वी पर राक्षस नीति चल रहे हैं । कवि को चाहिए कि वह त्याग, साधना और मुक्ति के गीत गाये । जैसे राम ने अपने स्पर्श से अहल्या का उद्धार किया था, वैसे ही तुलसीदास को अपनी साधना से भारत को जड़ता से उद्धार करना है । उस चेतना के स्पर्श से ही पाषाण-खंड हार बनते हैं, नहीं तो प्रकृति में झरने, झडी, नदी, कगार, पशु-पक्षियों के विहार को छोड़कर और कुछ नहीं है । देश में ऐसा युग आया है । जब कामदेव के बाण से झरती हुई पृथ्वी आकाश को रंगे हुए हैं प्रत्येक मानस पर उसी की छाया है । इसलिए छवि की मूर्ति दिखाई नहीं देती । लोग सब भ्रमवश सुषुप्ति को ही जागरण समझ बैठे हैं ।

प्रकृति की वाणी सुनकर तुलसी का मन पक्षी बनाकर आकाश में उड़ चलता है । अपनी उड़ान में वह रंग-रंग की तरंगें पार करता है । ये सब सामाजिक और व्यक्तिगत संस्कार है । इन्हें पार करने पर उन्हें भारत की वास्तविक दशा दिखाई देती है । जैसे सूर्य को राहु ने ग्रस्त लिया हो और उसकी आभा मन्द पड़ जाय, वैसे ही संस्कार हीनता की कालिमा में देश काल बंधा हुआ है । देश में छोटे-छोटे संप्रदाय जाति-पाँति मत-मतांतर परस्पर संघर्ष में

लगे हैं ।

वर्ण व्यवस्था विश्रृंखल हो गये हैं । शूद्र वर्ण व्यवस्था के चरण बनकर दूसरे वर्णों को ऊँचा उठाये हैं । इसके बदले उन्हें केवल अपमान मिलता है । इन शूद्रों पर वर्ण व्यवस्था के चरण उच्च वर्गों के अत्याचार के ही कारण थे । देश का सांस्कृतिक पतन हुआ और भारत के नभमंडल में दासता का अन्धकार छा गया । तुलसीदास ने समझ लिया कि इस अन्धकार को पार किये बिना सत्य के दर्शन नहीं हो सकते और न जीवन में नया प्रवाह आ सकता है । इसलिए विरोध से द्वन्द्व-समर करने के लिए वे तैयार होते हैं ।

कवि की अन्तरचेतना भारत का अन्धकार दूर करने के लिए उमड़कर कवि के अचेतन मन से टकराती हैं। लेकिन इसी समय उस छाया के ऊपर सुवर्ण तारक सी चमकती हुई रत्नावली दिखाई देती है । तुलसीदास क्षणभर उसका सौन्दर्य देखते रह जाते हैं फिर वह अस्पष्ट दिखाई हो जाती है और मन धीरे-धीरे नीचे उतरने लगता है । रत्नावली की सौन्दर्य में रंगी हुई प्रकृति अब बहुत मनोहर दिखाई पड़ती है । वह मित्रों के साथ पंचतीर्थ होते हुए पयस्विनी में स्नान करता है और इसी तरह और कुछ दिन घूमने-फिरने के बाद घर लौट आता है ।

एक कलाकार होने के कारण तुलसीदास के मन में समाज के अंधकार को मिटाने की इच्छा अपने दांपत्य जीवन के समान महत्वपूर्ण है । लेकिन इन दोनों छोरों को समन्वय के साथ ले जाना आसान नहीं । इसमें से एक चुनने का संघर्ष भी असामान्य है । यह एक कवि की नियति है ।

३.१.२ असाध्यवीणा – एक संपूर्ण कलाकार का चित्रण

कला, संस्कृति और साहित्य के जानकार अज्ञेय जी अपनी रचनाओं में शिल्प

संरचना और भाषिक तराश के अनूठे उदाहरण उपस्थित करते हैं। व्यापक मानवीयता, स्वाधीनता और सृजनशीलता में अटूट विश्वास अज्ञेय की रचना का वैशिष्ट्य है । व्यक्ति और समाज की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार करते हुए अज्ञेय व्यक्ति को मूल्य और सृजन का केन्द्र मानते है । व्यक्ति का व्यक्तिमत्ता को प्रतिष्ठित करने का आग्रह रखनेवाला कवि अन्ततः व्यक्ति की आत्मा के सहारे अन्तरात्मा तक की यात्रा करके उस परम तत्व का प्रतिष्ठा करते हैं ।

'असाध्यवीणा' में अज्ञेय जी ने कलाकार की अमानवीय सृजन शक्ति को व्यक्त किया है । कलाकार अपनी रचनाओं के द्वारा ईश्वरीय तत्वों का पुनःसृजन करते है । पुनरालेखन की यह क्षमता कलाकार को साधारण व्यक्ति से अलग कर देती है । मिथकीय ढाँचे में बना गया इस कविता का पात्र सब कवि की कल्पना भूमि में जन्मे है ।

कलाकार वज्रकीर्ति ने उसका निर्माण किया था । उस साधक ने अपनी पूरी ज़िन्दगी उस वीणा के निर्माण के लिए दे दिया था । अज्ञेय जी कहता है कि वह वीणा मंत्रपूत प्राचीन किरीटी तरु से बनायी गई थी । जिस किरीटी तरु के कानों में हिम शिखरअपने रहस्य कहा करते थे । जिसके कन्धों पर बादल सोते थे । उसकी डालें करि-शुण्डों सदृश थी, जो वन यूथों का परित्राण हिम-वर्षा से करता रहता था । जिसके कोटर में भालू बसते थे, जिसके वल्कल से केहरि अपने कन्धा खुजलाते थे जिसकी जडें पाताल लोक तक पहुँची हुई थीं जिसकी गन्ध-प्रवण शीतलता से अपना फन टिकाकर नागवासुकि सोता था । उस किरीटी तरु से वज्रकीर्ति ने उस वीणा को अपने संपूर्ण जीवन की साधना से बनाया था । वज्रकीर्ति ऐसा हठ साधक था, जिसने अपने संपूर्ण जीवन की साधना से उस वीणा का निर्माण किया था उस वीणा के निर्माण की प्रक्रिया में ही उस महाकलाकार की जीवनलीला समाप्त हो गयी । साधक के बिना वीणा अकेला पड़ गयी । राजदरबार में रखी वह वीणा अनेक मशहूर कलाकारों के

समक्ष प्रस्तुत की गई लेकिन जितने कलाकार अपने कलाकारिता के ख़मंड के साथ वीणा को सामना कर दिया वह सब निराश हो गया । उन कलाकारों को वीणा झंकृत भी नहीं कर सकी। ऐसे वीणा का नाम असाध्यवीणा ही ख्यात हो गया ।

एक दिन उस राजदरबार में अजित केशकम्बली का आगमन हुआ । वह अपने ऊपर लपेटे हुए कम्बल को ख़ोलता है । उसे धरती पर बिछाता है और वीणा को उठाकर उस पर रख़ देता है । अपनी पलकें मूँद लेता है । दीर्घ निश्वास करते है और उस वीणा को प्रणाम करते हुए उसके तारों को छूता है । कवि कहता है कि उसका वह छुवन अस्पर्श छुवन था । कैसा था वह छुवन जो छूता भी था और अस्पर्श भी था । उसके बाद उसने राजा से कहा -- "महाराज मैं कलाकार नहीं हूँ मात्र एक शिष्य हूँ, साधक हूँ जीवन के अनकहे सत्य का साक्षी मात्र हूँ । कहाँ मेरा तुच्छ व्यक्तित्व और कहाँ वज्रकीर्ति । प्राची किरीटी करु यह अभिमंत्रित वीणा मैं तो इसके ध्यान मात्र से गद्‌गद् और विह्वल हो उठता हूँ ।"[5]

यह कहकर वह मौन हो जाता है । पूरी सभा भी उसके साथ मौनी बन जाती है । कुछ देर बाद वह वीणा को अपनी गोद में रख़ लेता है । फिर अपना माथा उसके तारों से स्पर्श कर देता है । पूरी सभा विस्मय में डूबी जाती थी । वह अपने उस गहन मौन में उस वीणा को साध कर रहा था । उस साधना में वह सचमुच अपने को उस किरीटी तरु को ध्यान कर रहा था, जिससे उस वीणा को निर्मित किया गया था, उसे स्पष्ट स्पर्श हो रहा था कि किसी भी बडे से बडे कलाकार ने दम्भ और अहंबोध करके उस अभिमंत्रित वीणा को असाध्य बनाया जो वीणा किसी महान् शिल्पि के जीवन भर की साधना रही है, उसे कौन बजाने का साहस करे । लगता था उसे बिछे हुए कम्बल पर वह किरीटी तरु जीवित होकर खड़ा है, जिसकी जडें वासुकी के फण पर आधारित है, जिसके कन्धों पर बादल सोते थे और जिसके कानों में हिमगिरी

अपने रहस्य कहते थे । लगता था कि वज्रकीर्ति अपने समक्ष अवतरित किरीटि तरु को संबोधित करता हुआ नीरव एकालाप कर रहा है ।

अजितकेशकम्बली का आलापन कितना मर्मस्पर्शी है उसमें स्वयं को संपूर्ण रूप से उस विशाल किरीटी तरु के सामने विरेचन कर दिया गया । वह कहता है – "ओ विशाल तरु, तुम्हारे रूप को शत सहस्र पल्लाव और पतझरों ने सँवारा है कितनी बरसातों और कितने खद्योतों ने तुम्हारीआरती उतारी है । दिन में भोर गुजार करते रहे, रातों में झिल्ली ने मंगलगान सुनाये । साँझ-सवेरे अनगिनत अनपहचाने खग-कुलों ने अपनी मोद-भरी क्रीडा काकली से तुम्हारी डाली-डाली को कँपाया । तुम इस पूरे झारखण्ड के अग्रज हो, तात हो, सखाहो, गुरु होआश्रम हो तुम वन ध्वनियों के वृन्दगान के मूर्त रूप हो । ओ विशाल तरु मैं तुझे सुनूँ, तुम्हें देखूँ और तुम्हारा ध्यान करूँ – अनिमेष, स्तब्ध, संयत, संयुत, निर्वाक, मुझमें इतना साहस कहाँ कि मैं तुझे छू सकूँ । ओ विशाल तरु तेरी काया को छेद कर बाँध कर रची गयी वीणा को मेरे हाथ कैसे, अघात करूँ ।"[6]

"ओ विशाल तरु, यह वीणा तो मेरी गोद में रखी है परंतु मैं तो तेरी गोद में मोद भरे बालक की भाँति बैठा हूँ । तू मुझे संभाल । तुम्हारे पुलक में मेरी किलक डूब जाये । मैं तेरे अनुभव का एक-एक अंत स्वर सुनूँ, गुनूँ और विस्मय से भरकर आँकूँ । तुम्हारे झूले की लोरी में तन्मय होकर झूमूँ । तू होगा तेरी लय पर मेरी सासें भरे, पूरे रीतें और विश्रान्ति पायें।"

"ओ विशाल तरु तू ही गा यह वीणा तो तेरा अंग है । अंगी तो तू ही है । अक्षत् आत्म-भरित रस-विद अंगी । तू आ और मेरे अंधियारे अन्तस् में आलोक जगा । स्मृति का आलोक, श्रुति का आलोक तू गा"[7] – वीणा से उस निवेदन के पश्चात् केशकम्बली अपनी स्मृति रेखाओं के पीछे दौडता है । उसके आँखों के सामने संपूर्ण प्रकृति के विविध बिम्ब

उभर आते हैं । लगता है, उसके व्यक्तित्व में संपूर्ण प्रकृति है । उसे बादलों और बादलों के ख्रन घोर बिजली का स्मरण हो आता है, पत्तियों पर वर्षा की बूँद की स्पर्श याद आती है, घनी रात में महुआ फूलों का चुपचाप टपकना याद आता है । किसी चौंकते हुए ख्रगशाबक की चिहूँक याद आती है । वन झरनों के कल कल जल द्वारा शिलाओं को दुलराने की याद आती है । किसी पर्वतीय गाँव के उत्सव में बजते हुए ढोलक की आवाज़ उनके कानों में गूँजती है। किसी गडरिये की मनमोहक बाँसुरी का संगीत, किसी कठफोडे का ठेका, किसी फूल सूँघनी की इच्छा, फुरकन ये सब उसके स्मृति-रेख्राओं को जागृत हो उठते हैं । "हरसिंगार के फूलों जैसे ओस की बूँदों का ढरकना शरद ऋतु के तालों की लहरों की सरसराहट, कूँजों का क्रेंकार, टिट्टिभ की लंबी काँद, पंख्र युक्त सायक की भाँति उड़ती हंस बलाकायें सब उसकी चेतना में कौंधते हैं । चीड़ों के वनों में गन्ध से अन्धे उन्माद पतंगों की आपसी टकराहटें जल प्रपात के झरते हुए जल की एकस्वरता उसकी स्मृति में कौंध आती है । झिल्लियों और दाद्धरों, कोकिलों और चातकों की झनकारों और पुकारों की गति में संस्कृति की साँच-साँच सुनाई देने लगती है ।"[8]

वह केशकम्बली अपनी चिंताओं की डोर को अटूटे आगे बढ़ता है । सुदूर पहाड़ों से काले रंग के बादलों की संघ मानो हाथियों के समूह की चिघाड़ की भाँति उसकी स्मृति में उभर आती है । चढ़ती हुई बहिया की घरघराहट, किसी रेतीले कगार का छप-छडाप् की आवाज़ करते हुए टूटना, झंझावात् की तप्त फुककार, पेडों का अररा कर टूट गिरना उसे याद आते हैं । कभी ओलों की करों चपत, कभी सूख्री घासों, पाले के कोप से तनी कटारी टूटती-सी उसकी स्मृति में उभरती है । कभी ऐंठी हुई, मिट्टी का स्निग्ध धाम में धीरे-धीरे फिसलना उसे याद आता है । कभी उसे याद आते है हिमकण जो धरती के घावों को चुपचाप सहलाते

हैं । कभी गिरती हुई चट्टानों की गूँज घाटियों में भरती हुई याद आती है, कभी उन मन्द्र गूँजों की अनुगूँज खोई हुई नीरव श्वास-निश्वास सी स्मृति में कौंधती है ।

केशकम्बली की पूर्व स्मरण आगे बढ़ती है । हरी घासों में छोटे पेड़ों की छाया में ताल के किनारे निश्चित समय पर वन पशुओं की विभिन्न आतुर-तृप्त पुकारें उसे याद आती है । कई प्रकार की आवाज़ें उसकी चेतना में गूँजती है – कभी गर्जन, कभी धुर्धुर, कभी चीख़, कभी मूक कभी हुक्का, कभी चिचियाहट, जल परियों का कमल और कुमुद के पत्तों पर चोर पैरों से चलने की आवाज़, कभी दादुर के छलांगों की थाप उसकी चेतना में स्वर देती है । कभी किसी घुडसवार के घोडे की अधीर टप-टप और कभी अचंचल और धीर भैंसों के भारी खुर की थाप उसकी स्मृति में ध्वनित होती है । केशकम्बली इन स्मृतियों में डूबता ही जाता है । उसके स्मृति-पटल पर उसका परिवेश अंकित ही होता चला जाता है । उसकी स्मृति में तुषार कण की वह चौंकी हुई सिहरन, दुपहरी में घास-फूलों का खिल जाना असंख्य झूमती हुई भौमाखियों और पतंगों के गुंजार इन सबके बीच एक लम्बे अनमोल क्षण का ठहराव उभर आता है । तारों की तरल टिम-टिम कंपन का अस्पर्श प्रवाह, उसको देखकर ऐसा लगता है, मानो पतिव्रता युवति माताओं का आर्शीवाद उनके तरल नयनों से बह रहा हो । उस काल समागम को क्षण की लीयमान पुलकन उसे घेर लेती है ।

वह बोल उठता है – "मैं नहीं हूँ । मैं कहीं नहीं हूँ । ओ वन, ओ स्वर संसार, ओ नादमय संस्कृति, ओ रस-प्लावन मुझे क्षमा करो, मेरी अकिंचनता को भूलकर मुझे ओढ़ दे, ढकेल छा ले । ओ शरण्य तेरे सोये स्वर सागर का ज्वार मेरे गूँगेपन को डुबाले वह उस नादमय संस्कृति से प्रार्थना करता है – तू मुझे भूल जा । इस वीणा के तारों में तू उतर जा तू अपने से गा । तू अपने को गा ।"[9] केशकम्बली फिर से उस महान शक्ति संसार की ओर संकेत

करता है जो प्रकृति में व्याप्त है ।

तू गा, तू सन्निधि पा तू खो, तू आ तू हो - तू गा । इतना निवेदन के पश्चात् संगीतकार की ऊँगलियाँ तार पर काँपने लगी । वीणा के तारों पर थिरकने लगी और लगता था वीणा एक अलस अँगडाई लेकर जाग उठी हो । स्वरों के शिशु जाग उठे थे । लगता था नीरव पैरों से जादुई करों से धीरे-धीरे स्वर्णिम तारों का जाल डाल रहा हो । सहसा वीणा झनझना उठी । संगीतकार की आँखों में एक पिघली ठण्डी स्वर्णिम ज्वाला झलक गयी । संपूर्ण सभा जनों के तन और मन में एक बिजली सा रोमांच दौड़ गया । वीणा के माध्यम से वह असामान्य संगीत अवतरित हुआ, जिसमें प्रभामय ब्रह्म का मौन सोता है । उस अलौकिक संगीत में सब एकरसता में डूब गए । डूबे तो सब एकसाथ, परन्तु पार तिरे सब अलग-अलग एकांगी । किसी को वह संगीत अपने महाप्रभु का कृपा कटाक्ष लगा। किसी को मोक्ष प्राप्ति का आश्वासन लगा । किसी को भरी तिजोरी में सोने की खनक लगीं। किसी भूखे को लगा कि यह संगीत उसकी खाली पेट को भरनेवाली अन्न की सोंधी खुशबू है । किसी प्रियतम को अपनी नयी वधू की कल-कल सी पायल ध्वनि सुनाई पडी । किसी अन्य को अपने शिशु की किलकारी, किसी मछुए को वह संगीत उसके जाल में फँसी मछली की तड़पन जैसी सुनाई पड़ी । किसी दूसरे को मुक्त नभ में उड़ती चिड़िया की चहक प्रतीत हुई । किसी व्यवसायी मन को वह संगीत मंडी का संगीत लगी । यह संगीत मंदिर के घंडे की तालयुक्त ध्वनि के रूप में पूजारी मन को लगा । किसी श्रमिक को यह संगीत लोहे पर कसमसाती नौका के ऊपर लहरों की अविराम थपक से लगा। किसी किसान मन को लगा कि यह कुलिया की कटी हुई मेंड से बहते हुए जल की कल रव है । किसी नट को लगा कि यह संगीत नर्तकी की घूँघरू की गमक है किसी योद्धा को यह युद्ध का ढोल सा लगा । किसी को यह प्रलय का डमरू नाद

से लगा । किसी को यह जीवन की पहली पड़ाव जैसा प्रतीत हुई । संपूर्ण सभाजन उस संगीत में डूबे और जागे । वंशवद और निशब्द हो गए । सब के मनोकामनाएँ अलग-अलग जागी। सब संगीत में विलीन हो गई ।

फिर वीणा मूक हो गयी । भरी सभा साधु-साधु कह कर उठी । संगीतकार ने वीणा को अपनी गोद से धीरे से उतार कर नीचे रख्र दिया और उसे इस प्रकार देख्रने लगा जैसे माँ अपने शिशु को पालने में डालकर मुग्ध दृष्टि से देख्रती है । और फिर अपनी दीठ से दुलराता हुआ वह अलग हट जाता है । अजित केशकम्बली कहता है – "इस वीणा को साधने में मेरा श्रेय कुछ भी नहीं है । मैं तो स्वयं शून्य में डूब गया था । वीणा के माध्यम से मैं स्वयं को सब कुछ को सौंप दिया था । हे सभाजन, हे राजन, हे रानी आपने जो कुछ सुना वह मेरा नहीं था । वह वीणा का भी नहीं था । वह तो वह महाशून्य था, वह महामौन था जो अविभाज्य है अनाप्त है, अद्रवित और अप्रमेय है, जो शब्दहीन है, परन्तु वही सब में गाता है ।"[10]

असाध्यवीणा सृजन के रहस्य को खोलने वाली कविता है । जब तक व्यक्ति में सर्जक होने का दम्भ है, सृजन उससे दूर रहेगा । सर्जक जब संपूर्ण रूप से अपने आपको विसर्जित कर देता है, जब संपूर्ण परिवेश और संपूर्ण प्रकृति में वह लीयमान हो जाता है जब संपूर्ण परिवेश और प्रकृति उसके व्यक्तित्व में लय हो जाती है, तभी उसके भीतर का सृष्टा जागृत होता है । जब वह अच्छी प्रकार इस सत्य को आत्मसात कर लेता है कि सृजन वह नहीं कर रहा है, सृजन उसके माध्यम से हो रहा है, स्रष्टा वह नहीं, वह पराशक्ति है जो कण-कण में व्याप्त है जो अविभाज्य अनाप्त और अद्रवित महामौन है तभी वह सच्चा सर्जक हो पाता है । कोई भी कला अन्ततः उसी साधक की बनती है जो अपने आप को उस विराट् शक्ति को सौंप देता है, जिसकी गूँज अनुगूँज सर्वत्र है ।

३.१.३ कालिदास - परकायप्रवेशकार कलाकार

"प्रगतिवादी कवि नागार्जुन के जीवन कठोर संघर्षों में तपकर कूँदन की भाँति निखरा हुआ है । जीवन के विष को नागार्जुन ने भारतेन्दु और निराला की भाँति निर्विकार पिया और पचाया है ।"[11] उनके काव्य में नए जीवन के संकल्पों तथा जनवादी संस्कृति के निर्माण की आकाँक्षायें मूर्त हुई है ।

ऐतिहासिक पात्र कालिदास को केन्द्र में रखकर लिखी गई नागार्जुन की यह कविता कालिदास के कविमानस का रेखाचित्र है । कालिदास की संवेदनशीलता इसमें चित्रित की गई है । कालिदास की सहृदयता को कवि ने उनके भिन्न पात्रों के माध्यम से व्यक्त किया है । कालिदास के 'रघुवंश' का अज, 'कुमारसंभव' का रति, 'मेघदूत' का यक्ष आदि पात्रों के बदले कालिदास स्वयं रोए है । 'मेघदूत' में कालिदास बादलों को संदेश वाहक बनाकर अपना प्रणय संदेश संप्रेषित करता है । सचमुच इस कविता में कालिदास के काव्य ग्रन्थों के मार्मिक स्थलों का सांकेतिक किंतु मोहक निदर्शन हुआ है ।

यह एक सफल और बौद्धिक कविता है । कवि अपने पात्रों की वेदनाओं को जब स्वयं की वेदना से एकाकार कर लेता है, तभी श्रेष्ठ काव्य का सृजन होता है । इस कविता में कालिदास ने इन्दुमति के मृत्युशोक में उसका पति अज का विकल चित्रित किया है । उसी तरह महाशिव ने जब कामदेव को भस्म करा दिया तब रति के विरह को कालिदास ने अपनी पीड़ा मानी । कवि पूछते हैं – "कालिदास सच सच बतलाना, रति रोई या तुम रोए थे ?"[12]

नागार्जुन को विश्वास है कि यक्ष के विरह को चित्रित करते समय कालिदास स्वयं उसके दुःख से भर उठे होंगे । धरातल पर एकाकी होते हुए अपनी प्रियतमा से मिलने का

जो विचार यक्ष के मन में कितने होंगे उतने ही विरह वेदना कालिदास ने उन पंक्तियों को लिखते समय स्वयं अनुभव किया होगा । इसलिए वे अपने कल्पनालोक में मेघ के साथ-साथ स्वयं भी यक्ष द्वारा निर्दिष्ट स्थानों पर उड़ते फिरे होंगे ।

यहाँ नागार्जुन ने कवि कालिदास के द्वारा एक कलाकार की सृजनवेदना का सुव्यक्त चित्रण किया है । नागार्जुन कहते हैं एक कलाकार सृजन करते समय सृष्टि की अनुभूतियों को स्वयं वहन करके एक परकाय प्रवेश की प्रवृत्ति करते हैं । कलाकार तब एक व्यक्ति होते हुए भी एक दूसरे व्यक्तित्व को ओढ़ लेते है । यह द्वन्द्व व्यक्तित्व के कारण कलाकार के मन में एक संघर्ष पैदा करते है । यह संघर्ष से नए-नए सृष्टि बन जाती है ।

३.१.४ मैं हूँ – एक आम कवि का अथाह रुदन

धूमिल हिन्दी के एकमात्र किसान कवि है । व्यवस्था से कटे आदमी की आंतरिक पीड़ा, विवशता, अबोधता को धूमिल अपने कटु अनुभवों की समग्रता से सृजनात्मक संस्पर्श देते हैं। समकालीन कविता का केन्द्रीय चरित्र आम आदमी है । इसलिए स्वातन्त्र्योत्तर काल की अप्रत्याशित प्रगति आम आदमी पर रखा गया शोषण, जिम्मेदारियों की बोझ और सामाजिक औपचारिकताओं को निभाकर पेट पूर्ति की तलाश आदि समकालीन कविताओं के विषय बन गये । 'मैं हूँ' कविता में कवि ने ऐसी क्लिष्टताओं में पिसनेवाला एक आम कवि का चित्रण किया है ।

यह कवि का अथाह रुदन है । इस अंधकारमय संसार में आर-पार को अपने दुःख अभिव्यक्त करने के लिए उसको रोना पड़ता है । कवि उच्च स्वर में रोते हैं –"मुझे लिखो, मैं कटी हुई अँगुलियाँ हूँ ।" कवि के हाथ की जो अँगुलियाँ हैं वे भूख ने खा लिया है । फिर

भी वह गा रहा है टूटे हुए हृदय ने खुद को जोड़ने के लिए ।

कविता पाठकों को मनोरंजन करती है इसलिए कवि एक सुन्दर बगीचा है । उद्यान हृदयहारी और सुखद है । इस फुलवारी से तुम एक शब्द - फूल तोड़ सकता हो ? तुम उसे तोडो किन्तु तुम्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि एक आदमी ने इसे अपने खून से सींचा है । उद्यान को सींचनेवाले माली यहाँ सुन्दर कविताएँ रचने वाला कवि है । एक कवि अपनी रचनाओं को खून से सींचकर मनोरम बना देते है । इसलिए उद्यान को सींचनेवाले माली की सेवा एवं अथक कोशिश से हमें नज़र अन्दाज़ नहीं करना चाहिए ।

दूसरे भाग में कवि कला सिर्फ कला के लिए नहीं कवि या कलाकार को जीवनोपार्जन का माध्यम भी कहलाते है। कवि कहते है – एक बगीचे की चारदीवारी के पीछे कुछ भूखे बच्चे आँख मिचौनी खेल रहे हैं । कवि एक परिवार का अगुआ है । अपार काव्य संसार का प्रजापति है कवि । अत: प्रजाओं पर होते अन्याय और अत्याचार को कवि नज़र अंदाज़ नहीं कर सकता । उस विशाल परिवार के सदस्यों को आज़ादी को आक्रमण की तरह सहना पड़ता है । शासकों के आक्रमण और अन्याय के विरुद्ध यहाँ कवि आवाज़ें बुलन्द करते हैं ।

कवि एक शक्तिशाली बंकर है । वहाँ खाली वक्त तुम अपने जूते उतार सकते हो । बंदूक टेक सकते हो । मगर यह नहीं भूलना चाहिए कि कवि एक खौलता हुआ आँसू है । वह उत्तप्त रक्त सिक्त है जिससे तुम अपनी ठिठुरी हुई करुणा सेंक सकते हो ।

कवि थकान में गिरी हुई लय है । यह सुनकर तुम्हें प्रसन्नता हुई होगी । लेकिन तुम सोचे कि कवि व्यावहारिकता की बटी हुई से रस्सी से झूलती हुई संवेदना की आत्महत्या है ।

'मैं हूँ' एक महत्वपूर्ण कविता है । शब्दों को खोलकर रखनेवाले कवि धूमिल ने अपनी कविता के विषय में तथा उसके सरोकारों के विषय में खुलकर बातें की हैं । 'मैं हूँ' एक अद्वितीय रचना है कि जिसकी समझ और प्रौढ़ता रोमांचक है । इस अनूठी कविता में धूमिल ने इस समाज में कवि को क्यों, कैसा होना चाहिए और उसकी जीवन्त प्रविधि क्या हो – इसकी सर्जनात्मक अभिव्यक्ति दी है ।

३.२ हिन्दी के प्रतिनिधि कहानियों में कलाकार की प्रस्तुति

कहानी का जन्म आज से हज़ारों वर्ष पूर्व हो चुका था । कथा शब्द की व्युत्पत्ति 'कथ' धातु से हुई है । जिसका अर्थ है – 'वह जो कहा जाय'। आधुनिक हिन्दी साहित्य में गद्य का यह रूप बंगला के माध्यम से पाश्चात्य साहित्य से आया है । कहानी एक स्वतः पूर्ण रचना है जिसमें किसी एक ही तथ्य अथवा भाव को अग्रसर करने के लिए कौतूहलपूर्ण तथा रोचक घटनाओं की योजना की जाती है । कहानी इतनी ही लंबी हो कि वह एक-एक ही बैठक या लगभग आधे घंटे में पढ़ी जा सके ।

कला और कलाकार पर आधारित कहानियों का विवेचन इस अध्याय का विषय है । ऐसी कहानियों में कलाकार और उसका दृष्टिकोण कथावस्तु का केन्द्र होगा । कला जगत् के उच्चादर्शों की प्रस्तुति और इस क्षेत्र में होने वाला छल और छद्म का प्रकाशन आदि इन कहानियों का उद्देश्य है । इसका अध्ययन के लिए मैं ने चार कहानियों को चुना है । वे पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र के दो कहानियाँ 'संगीत-समाधि' और 'कला का पुरस्कार' हैं । 'संगीत-समाधि' नामक कहानी में कला की दिव्य शक्ति और कलाकार के प्रति समाज का दृष्टिकोण के बारे में कहलाते है । 'कला का पुरस्कार' कलाकार के सशक्त चित्रण है । तीसरी कहानी यशपाल की 'शिवपार्वती' है । इसमें लेखक कला के क्षेत्र में नर नारी को एक दूसरे के पूरक माना है । चौथा

कहानी रेणु की 'नेपथ्य का अभिनेता' नामक कहानी है । इसमें सच्चा कलाकार का चित्रण हमें देखने को मिलते है ।

३.२.१ संगीत-समाधि

यह दो कलाकारों की कहानी है । यह कहानी इंदौर में हो रही है । दो कलाकारों में एक वीणाकार और दूसरा गायक है जो महान गुणी होने पर भी इंदौर की सड़कों पर गा-गाकर भीख मांगा करते थे । वे दोनों सांसारिक जीवन से विरक्त और दिखावटी के प्रति उदासीन थे । वे अलौकिक जीवन बिताते थे । जनसामान्य की तरह सांसारिक की संकीर्ण परिधि में बंधे नहीं थे । इसलिए वे दोनों लौकिक ऐश्वर्य को तुच्छ मानते थे ।

एक दिन इन दोनों इन्दौर की सड़क के किनारे संपूर्ण नगर को मंत्रमुग्ध किया करते थे । तब जनता ने उन्हें पाखंडी और मद्यप कहकर राजाज्ञा से नगर से निष्कासित कर दिया । नगर से निष्कासित होने के पश्चात् उन दो कलाकार नगर से दूर पर्णकुटी बनाकर अनाश्रित जीवन बिताने लगे । बारह वर्षों की अनवरत साधना से वे कला की साक्षात् मूर्ति बन गए । वे सशक्त होकर राजाज्ञा को भंगकर नगर के राजमार्ग पर भीमपलासी राग में गाने लगे । राजा, प्रजा और बाकी सारी जनता उस संगीत में जडवत् रह गयी । जनता को सुध आने तक वे दोनों स्वर माधुरी से उन्हें मन्त्रमुग्ध कर दिया । उनकी प्रतिभा से प्रसन्न होकर महाराज ने उन्हें अपने शीशमहल में ले जाने की आज्ञा दी और उन्हें राज्य के मुख्य कलाकार के रूप में नियुक्त किया । जब राजसेवक उन्हें उठाने लगे तब उन्हें ज्ञात हुआ कि कलाकारों के प्राण स्वर के तारों से बंधकर स्वर्गारोहण कर चुके है ।

कलाकार साधक होता है । कला की साधना भक्त या योगी की साधना के समान

ही निःशेष और निर्विकल्प होती है । साधना द्वारा कलाकार कला के अत्युच्च शिखरों पर पहुँच जाता है जो साधारण मनुष्य के लिए कल्पनातीत और दुर्गम होते हैं । उसके असाधारण अध्यवसाय के आगे साधारण दैहिक दुर्बलताएँ पराजित होती है ।

'संगीत-समाधि' नामक कहानी में लेखक ने कलाकार और समाज के संबंधों के बारे में चित्रण किया है । कलाकार और जन सामान्य के प्रतिमान और मूल्य इतने भिन्न थे कि वे दोनों दो विभिन्न लोकों के निवासी हैं ।

३.२.२ कला का पुरस्कार

यह कहानी कलाकार के व्यक्तित्व को केन्द्र में रखकर लिखी गयी है । सच्चा कलाकार धन के लिए कला को दुरुपयोग करने के लिए तैयार नहीं होता । कभी-कभी कलाकार की प्रवृत्तियाँ समाज की मर्यादाओं का उल्लंघन कर जाती है ।

'कला का पुरस्कार' नामक कहानी का नायक संसार की तुच्छ चीज़ों को महत्वपूर्ण मानते है । उसका नाम कलाधर है । वह कुरूप और अशिक्षित है । उसकी नाक बन्दर की तरह चपटी, होंठ वनमानुष्य की तरह बीभत्स, कपोल चिपके, आँखें निस्तेज और धंसी हुई है । लेखक कहते है – कलाधर की सृष्टि में सृष्टिकर्ता ने किसी भी कला का प्रयोग नहीं किया है । कलाधर संसार की साधारण प्रवृत्तियों से विमुख पैतृक व्यवसाय से उदासीन धनोपार्जन की चिंता से कोसों दूर, कला की साधना में रत रहता है । निरन्तर अभ्यास से वे एक महान शिल्पि बन गए । जयपुर राज्य के भवनों का निर्माण करने के पश्चात् देश भर में उसकी ख्याति व्याप्त हो गयी है । लेकिन जयपुर के पश्चात् वह कहीं वास्तुकला का कार्य करने नहीं जाता। वह अपने जीवन के अमूल्य चीज़ों को छोड़कर नहीं जाना चाहते थे । इसलिए उन्होंने रामा नदी

के तट पर एकान्त बनकर समय व्यतीत कर लिया। वह कहता है – "ये अमीर क्या जानें कि कला क्या होती है ? ये कलाकार के गुणों से अधिक महत्व अपने पैसों को देते हैं और मेरे लिए, जब तक सूखी लिट्टियाँ और बहन रामा का स्वादिष्ट जल है तब तक पैसों की कोई ज़रूरत नहीं । भवन रचता हूँ मैं, कलेजे का ख़ून होता है मेरे, और नाम होता है पैसे वालों का । बाज़ आया मैं कला के ऐसे वेश्याचार से । मेरे लिए ये बालू के महल ही बहुत है इन्हीं को अपनी प्रसन्नता के लिए संवार और बिगाड़कर मैं अपने जीवन को धन्य समझता हूँ ।"[13]

कन्दर्पपुर के महाराज अपनी राजकुमारी के प्रसादनाथ 'कलाकुंज' बनवाना चाहते हैं और इस अद्‌भुत भवन के निर्माण के लिए कलाधर को मुख्य शिल्पी नियुक्त करना चाहते हैं । लेकिन मंत्री कलाधर के बारे में ऐसे कहते हैं – "वह कला पर धन की प्रभुता नहीं स्वीकार करना चाहता । कला के सामने धन को वह गुलाम समझता है । मगर, धनिक तो ऐसा नहीं समझते । इसी से बड़े आदमियों से उसकी पटती नहीं । वह यदि स्वनिर्मित किसी मूर्ति की आँखें अध-खुली रखना चाहे और उस मूर्ति का ख़रीदार यह इच्छा करे नहीं, आँखें तो खुली ही अच्छी होती हैं, अस्तु वैसे ही बनें – तो कलाधर अपना काम वहीं रोक देगा । वह कहेगा – नहीं, श्रीमान् यह आपका विषय नहीं । इसे मेरी ही इच्छा से तैयार होने दीजिए। मैं ख़ूब जानता हूँ कि इस मूर्ति के चेहरे पर अध-खुली आँखें ही अधिक आकर्षक मालूम होंगी । उसकी ऐसी ही बातों से उससे और उसके ग्राहकों से पटती नहीं । इसी से वह स्वयं कला के इस क्रय-विक्रय से अलग रहता है । केवल 'स्वान्त-सुखाय' मिट्‌टी का सात्विक संसार, सरिता रामा के तट पर बनाया और बिगाड़ा करता है ।"[14]

मंत्री से कलाधर के इन विचारों को जानकर महाराज उसे कलाकुंज का निर्माण-कार्य उसी की शर्तों पर दे देते हैं । अंत में कलाकार ने निर्माण की प्रवृत्ति को राजसम्मान

मानकर स्वीकार कर दिया । वह उस प्रवृत्ति केलिए धन नहीं चाहते थे । लेकिन वह निर्माण में अपनी कला की पराकाष्ठा को देखना चाहता है । वह वास्तुकला द्वारा अपनी यश का महाकाव्य लिखना चाहता है । लेखक के शब्दों में, "वह इधर कुछ दिनों से यह विचार कर रहा था कि अगर कोई धनी मेरी शर्तों पर मुझसे अपूर्व निर्माण करने को कहे तो एक बार इसी बहाने, दुनिया को युगों तक स्तब्ध रखने के लिए, कुछ ठोस, सौन्दर्य की सृष्टि भी कर दूँ ।"[15]

एक साल से ज़्यादा लेकर कलाधर ने उस महंगी मंदिर का निर्माण किया । वह वास्तुकला की एक अपूर्व कृति थी । राजकुमारी और महाराज उसमें संतुष्ट होकर उसे पुरस्कार देने की इच्छा व्यक्त करते हैं । राजकुमारी कलाधर की अमूल्य कारीगरी को केवल पुरस्कार से तुच्छ बनाना नहीं चाहती थी । इसलिए उसने कलाधर से पुरस्कार से सम्मानित करने की इच्छा प्रकट की । तब कलाधर उसी महल के कोने में अपना जीवन व्यतीत करने की इच्छा प्रकट करते है । इसके साथ राजकुमारी के चरण कमलों को चूमने का आग्रह भी बताते है और राजकुमारी के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही कलाधर राजकुमारी के पैरों को चूम लेता है । इसके इस दुःसाहस के लिए उसे मृत्यु दण्ड मिलता है । अमरता का महाकाव्य लिखने वाले कलाकार को अपनी सर्वोत्कृष्ट रचना के लिए ऐसा भयंकर पुरस्कार दिया जाता है ।

कलाकार का मन और आकांक्षाएँ जनसामान्य के मनोकामनाओं से अलग है । कलाकार का रूप सौन्दर्य बाह्य नहीं उनके कलासृष्टियों के अन्दर रहते हैं ।

३.२.३ शिव पार्वती

यह यशपाल की कहानी है । इस कहानी में अमेघ नामक मूर्तिकार के जीवन का चित्रण हुआ है । अमेघ ने अपनी कलाचारुता से महाप्रताजी धर्मरक्षक महाराज भद्रमहि के

दरबार के राजकीय तक्षक का स्थान प्राप्त किया । उनको प्रौढ़ावस्था में अपनी कला को उत्तराधिकारी मिलने की इच्छा हुई । इसकी फलप्राप्ती के रूप में उसको एक पुत्री का जन्म हुआ । वह लड़की पिताजी के शिक्षण से एक मूर्तिकार बन गयी । लेकिन एक नारी होने के कारण राजकीय तक्षक की उत्तराधिकारिणी बनने से उसे हटा ।

यशपाल ने इस कहानी के द्वारा कला के क्षेत्र में नारी से करने वाले भेदभाव का चित्रण किया है । नर-नारी का भेद समाज के अन्य पहलुओं में कैसे होते हैं वैसे कला के क्षेत्र में हो रहे हैं । यहाँ लेखक ने इस कहानी में उनका मंतव्य व्यक्त किया है । "कला की देवी सरस्वती भी स्वयं नारी है । संपूर्ण साधना से कला को स्वायत्त करने में नर-नारी की क्षमता समान है ।"[16] इसे कहानीकार ने इस कहानी के द्वारा व्यक्त किया है ।

महाराज भद्रमहि ने उनके शासन काल में एक स्मृतिमंडप का निर्माण किया। उसके अन्दर वह उनकी एक मूर्ती बनाना चाहते है । इसके लिए उन्होंने एक मूर्तिकार को बुलाया । उन्होंने स्मृतिमंडप में मूर्ती का निर्माण शुरू किया । एक दिन मेघा उस मूर्तिकार से मिलने आयी । वहाँ से उन दोनों के बीच एक रागात्मक संबंध हुआ । उन्होंने मिलकर दो मूर्तियों का निर्माण किया । जब राजा ने स्मृतिमंडप का संदर्शन किया तब उसे ज्ञात हुआ कि नये मूर्तिकार और मेघा की मूर्ति बनाने की क्षमता समान है । वे दोनों मिलकर एक मूर्ती के स्थान पर दो मूर्तियों का निर्माण किये । वे दो मूर्तियाँ राजा की नहीं थी वे शिव-पार्वती की थी । वे देखकर राजा प्रसन्न हो जाते हैं । वह स्मृतिमंडप शिव-पार्वती मंदिर के रूप में अभी भी विराजित है । लेकिन उन मूर्तियों के निर्माण के बाद राजा के आने के पहले ही मूर्तिकार स्वर्गारोहण कर चुके थे ।

३.२.४ नेपथ्य का अभिनेता

यह फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी है । इस नाम से ही समझ सकते है कि यह एक अभिनेता की कहानी है, एक थियेटर कम्पनी का अभिनेता । उन्नीस सौ उनतीस में लेखक उसे देखकर इतना उत्तेजित हो गया था कि वह अभी भी मन में वैसे ही है । उस अभिनेता को सालों के बाद लेखक फारबिसगंज की एक छोटी सी चाय की दूकान से मिलते हैं । उसे देखते ही अभिनेता के विभिन्न थियेटर के विभिन्न पात्रों के चित्रों ने लेखक की आँखों के सामने आँख मिचौनी शुरू की है । "वेटिंग रूम में सोये हुए लड़के को मारने वाला, काँपनेवाला हत्यारा, श्रीमती मंजरी खेला का अंगरेज़ जज ...."[17]

रेणु जी ने इस कहानी के द्वारा फिल्में खाये हुए नाटक के जिस अभिनेता का चित्रण किया है उस अभिनेता नाटक को छोड़कर और कहीं नहीं जाना चाहता था । ऐसे कई कलाकार है वे नाटक के लिए सब कुछ दे दिया है । बुढ़ापे में खाली हाथ होकर केवल एक वक्त का भोजन के लिए दूसरों के सामने हाथ बढ़ाते है । वह कला को कला के लिए ही मानते है । वे कला से और कुछ नहीं माँगते हैं । लेकिन हरी भरी ज़िन्दगी के बाद भी उन्हें लंबी सफर करना पड़ता है । एक सच्चे कलाकार कला के लिए जीते है और मरते है । वे इस संसार में कई महत्वपूर्ण स्मृति चिन्हों को छोड़ते हैं । उन स्मृति चिन्हों से कलाकार कालयवनिका के पीछे जाने के बाद भी जीते हैं। एक कलाकार का यथार्थ जीवन वहाँ शुरू होते है ।

३.३ हिन्दी के प्रतिनिधि नाटकों में कलाकार की प्रस्तुति

नाटक मानव जीवन का सजीव प्रतिलिपि है । उसमें मानवता, मानव मूल्यों, अनुभूतियों, समस्याओं आदि पर यशासंभ प्रकाश डाला जाता है । दृश्य-काव्य की ओजस्विता,

प्रभावोत्पादकता एवं अनुरंजकता नाटक को महत्वपूर्ण बना देती है । नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में, "अभिनय नाटक कला की सर्वोत्तम सृष्टि है ।"

नाटक को पंचम वेद कहा जाता है । स्वयं ब्रह्मा ने चार वेदों की सहायता से इसकी रचना लोगों के मनोरंजन के लिए की थी, ऐसी एक पौराणिक मान्यता है । इसके लिए उन्होंने ऋग्वेद से संवाद, सामवेद से गान, यजुर्वेद से नाट्य और अथर्ववेद से रस लिया है।

हिन्दी में बाबू हरिश्चन्द्र ने नाटक लिखने का सूत्रपात किया । लेकिन भारतेन्दुकाल से तत्वपरक दृष्टि से नाटक को एक रूप मिला । कला और कलाकार की समस्याओं पर चर्चित नाटकों की संख्या अन्य विधाओं की संख्या से तुलना करते समय बहुत ज़्यादा है । लेकिन अध्ययन की सुविधा के लिए मैंने चार नाटकों को चुन लिया है ।

३.३.१ 'आषाढ़ का एक दिन' में कालिदास

मोहन राकेश कृत 'आषाढ़ का एक दिन' का कालिदास वास्तव में ऐतिहासिक पात्र है । मोहन राकेश ने कालिदास को वर्तमान जीवन संदर्भ में प्रस्तुत किया है । वस्तुतः कालिदास का द्वन्द्व ही आज के साहित्यकार का द्वन्द्व है । 'आषाढ़ का एक दिन' नामक नाटक में कालिदास के विभिन्न प्रकार के कला संबंधी आत्मसंघर्षों को प्रस्तुत किया गया है ।

कालिदास इतिहास प्रसिद्ध प्रतिभा संपन्न कवि और नाटककार के रूप में ख्यात कीर्त है । कालिदास के साहित्यों का प्रेरणास्रोत उनकी प्रेमिका मल्लिका और उनके गाँव का प्राकृतिक सौन्दर्य है । इन प्रेरणाओं से उत्पन्न 'ऋतु-संहार' नामक रचनाओं से उसकी कीर्ति उज्जयिनी के सम्राट के पास पहूँचती है । उज्जयिनी की राजसभा ने कालिदास को राजकवि के पद्वी देकर सम्मानित किया । लेकिन कालिदास यह नहीं चाहते थे । वह अपनी प्रेमिका और

ग्राम प्रांतर की आसक्ति से राजनीतिक सम्मान छोड़ना चाहता है लेकिन फिर प्रेमिका मल्लिका के आग्रह से वह उज्जयिनी चला जाता है ।

उज्जयिनी में कालिदास का विवाह विदुषी राजदुहिता प्रियंगुमंजरी से होता है । इन सब बातों से अतृप्त कालिदास के मन अस्वस्थ हो जाता है । उज्जयिनी के राजा कश्मीर में उठी विद्रोही शक्तियों के दमन के लिए कालिदास को राजनीतिज्ञ के रूप में भेज देते हैं । कालिदास को राजनीतिक उथल-पुथल में रस नहीं आता । इसी वक्त उज्जयिनी के राजा का मृत्यु होता और कश्मीर की राजाधिकार विद्रोहियों के हाथों में हो जाती है । तब कालिदास कश्मीर छोड़कर मल्लिका के पास आता है और उसके साथ जीना चाहता है । इसके लिए राजदरबार से प्राप्त नया नाम 'मातृगुप्त' से मुक्ती प्राप्त ली । लेकिन उसकी इच्छा अधूरी रह जाती है । तब मल्लिका विलोम के एक बच्ची की माँ बन गयी थी । कालिदास जब यह असलियत जानता है तब उसका मन पूरी तरह तोड़-फोड़ होता है । वह मल्लिका और उस ग्राम प्रान्तर को छोड़कर खिसक जाता है ।

'आषाढ़ का एक दिन' नामक नाटक में लेखक ने अपने प्रोरणा-स्रोतों से दूर होकर सामाजिक मूल्यों के लिए मन और शरीर को विभिन्न छोरों में रखे एक कलाकार का चित्रण किया है ।

३.३.२ 'खजुराहो का शिल्पी' में चंडवर्मा

डॉ. शंकर शेष द्वारा रचित 'खजुराहो का शिल्पी' नामक नाटक का पात्र चंडवर्मा राजा यशोवर्मन के राज्य का आश्रित राजशिल्पी है । वह परंपरानुगामी शिल्पी होते हुए भी प्रतिभाशक्ति से दूर है । वह अपने पूर्वजों की प्रतिभा पर अपनी अजीविका चलाना चाहता

है । राजा यशोवर्मन क्षण के मोह को साकार करने के लिए एक मंदिर बनवाना चाहता है । इसके लिए राजशिल्पी चंडवर्मा को अयोजित कर लिया । चंडवर्मा अपना प्रतिभा का अभाव के कारण घिसी-पीटी परंपराग्रस्त मंदिर का मानचित्र बनाकर राजा को दिखाता है । चंडवर्मा का यह प्रवृत्ति राजा के मन में ईर्ष्या उत्पन्न कर दिया । वह कठोर शब्दों में चंडवर्मा को भर्त्सना करता है । राजा यशोवर्मन के आदतें चंडवर्मा के मन और व्यक्तित्व को टूट-फूट देती है ।

राजा उस मंदिर का निर्माण के लिए मेघराज आनंद नामक सच्चे शिल्पी को सौंप देता है । उसकी पराजित और अपमानित मनोवृत्ति कुत्सित और नीच प्रवृत्ति से भर जाती है । वह मंदिर की मूर्तियों पर राजकुमारी अलका का रूप सामीप्य आरोप कर अलका और शिल्पी मेघराज आनंद के चारित्र्य पर छूटा प्रस्ताव बनाते है । अंत में चंडवर्मा का अधःपतित मनोवृत्ति के सबूत भरे दरबार में प्रस्तुत करता है और पूर्ण रूप से स्थानभ्रष्ट एवं लज्जित होकर चले जाते है ।

इस नाटक के द्वारा शंकर शेष ने कला के क्षेत्र में होनेवाली छल और छद्म का चित्रण किया है । नकल कलाकारिता से कला को प्रगति नहीं अवहेलन मिल जाते है । सच्चे कलाकार कला को अवहेलन नहीं करते है और अपनी कलाकारिता को समाज की प्रगति के लिए उपयुक्त करते हैं ।

३.३.३ 'नायक खलनायक विदूषक' में कपिंजल

सुरेन्द्र वर्मा कृत तीन नाटकों में संकलित 'नायक खलनायक विदूषक' नाटक का आर्य कपिंजल एक श्रेष्ठ अभिनेता है । वह नीलनगर की नाट्यशाला के नाटकों में विदूषक की भूमिका करता है । वह विदूषक के रूप में अद्‌भुत लोकप्रिय है । उसके अभिनय-

कलात्मकता की प्रशंसा मेरुतुंग साम्राज्य के सेनापति शक्तिभद्र भी करते हैं । लेकिन अब शक्तिभद्र और नीलनगर के सम्राट के बीच हुई सन्धि के कारण खेले जानेवाले नाटकों में कपिंजल विदूषक की भूमिका करने के लिए तैयार नहीं । पिछले छह मासों से वह नाट्यशाला के सूत्रधार के पास अपनी इच्छा प्रकट करता रहा कि उसे कोई दूसरी भूमिका दीजिए क्योंकि वह विदूषक की भूमिका से पूर्णतः विरक्त चुका है । लेकिन उसकी यह इच्छा को नाटक के सूत्रधार निराकरण करती है ।

कपिंजल एक श्रेष्ठ अभिनेता होते हुए भी सूत्रधार उसे कई नाटकों में एक ही प्रकार विदूषक का पात्र ही देते है । वह उस पात्र के अलावा भिन्न-भिन्न पात्रों को अवतरण करने की इच्छा करते है । इसके द्वारा वह अपने व्यक्तित्व के कलाकार के अन्य रूप, व्यक्तित्व, अभिनय क्षमता आदि का परिचय देना चाहता है । इसके लिए कपिंजल का कलासाधक का मन का आग्रह है । एक ही प्रकार के अभिनय प्रस्तुत करते करते उसको वह पात्र एक झूठन का अनुभव दिलाते हैं । एक ऐसे पात्र का अभिनय जो उसके रंग संस्कारों एवं रंग रुचियों के प्रतिकूल पड़ता है और जो स्वच्छ रंगानुभव से ही शून्य नहीं प्रस्तुत रंगकर्म में कहीं पर भी व्यापार का कोई संघर्ष पूर्ण बिन्दु नहीं है ।

ऐसी एक कलाकार की प्रस्तुति करके सुरेन्द्रवर्मा ने नाटक के अभिनेता की निस्सहायता को व्यक्त किया है । अपनी इच्छा के अनुसार पात्रों को चुनने की आज़ादी उसे नहीं होती है । मंच पर एक पात्र को सफल बनाने से उसी प्रकार के पात्रों को प्रस्तुत करने के लिए निर्बंधित हो जाने से कलाकर अपनी कला से ऊब हो जाता है ।

३.३.४ 'कोणार्क' में विशु

जगदीश चन्द्र माथुर कृत 'कोणार्क' नाटक का एक मुख्य पात्र विशु एक महान

शिल्पि है ।

उत्कल नरेश नरसिंह देव की इच्छा से बारह सौ शिल्पियों के साथ लगातार बारह वर्ष कोणार्क मंदिर की निर्मिति में जुटा विशु संपूर्ण मानवीय भाव-भावनाओं और जीवन की संपूर्ण गतिविधियों को विविध मूर्तियों में साकार करता है । लेकिन मंदिर के शिखर बनाते वक्त उसकी कलाकारिता हतप्रभ हो जाती है । एक संघर्षपूर्ण परिस्थिति में चिंताग्रस्त विशु को राजा नरसिंह देव के अमात्य चालुक्य धमकी देते है । उसे एक सप्ताह के भीतर मंदिर पूर्ण करना चाहिए । ऐसी एक कठिन परिस्थिति में उसको सहायता देने के लिए विशु का पुत्र युवक धर्मपद आता है । अमात्य चालुक्य की आज्ञा के अनुसार विशु और धर्मपद ने मंदिर के शिखर की स्थापना की ।

मंदिर में मूर्ती प्रतिष्ठापन करने के लिए राजा नरसिंह देव का आगमन हुआ। उस समय अमात्य चालुक्य के षड्यंत्र की सूचना विशु को मिलती है । अमात्य चालुक्य प्रजा को अपने गलत कर्मों से राजा से दूर करता था । शिल्पियों के कुटुम्बियों की दी गयी ज़मीन और खेती छीन ली थी और हज़ारों किसान, शबर, मज़दूर, शिल्पि आदि उनके अत्याचारों से आतंकित थे । विशु को विश्वास था कि चालुक्य राजा नरसिंह देव को ज़रूर हरायेगा । और कलात्मक सौन्दर्य की उत्कृष्ट निधि कोणार्क का मंदिर अत्याचारी के अपावन हाथों में आ जाएगा । इसलिए वह चालुक्य के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए तैयार हो जाता है । उस अवसर पर अत्याचारी चालुक्य के हाथों से विशु का पुत्र धर्मपद की मृत्यु हुई । यह उनकी प्रतिकार अग्नि को और भी बढ़ा दिया । अमात्य चालुक्य शिल्पि और सैनिकों को मार गिराता हुआ । विशु राजा नरसिंह देव को खोजकर मंदिर में आता है उस वक्त विशु मंदिर के गर्भगृह में जाकर चुंबक को कुदाली से तोड़ते है । विशु द्वारा चुंबक टूट जाता है जिससे भगवान सूर्यदेव की मूर्ति,

शिखर छत और दीवारें विस्फोट के साथ गिर पड़ती है । जिसके नीचे दबकर चालुक्य मर जाता है । और विशु भी दबकर मर जाता है । इस प्रकार विशु ने विध्वंसक शक्तियों के हाथों से अपनी पावन कला की रक्षा की और साथों साथ आत्मबलिदान करते हुए राष्ट्र की भी रक्षा की ।

इस नाटक में जगदीश चन्द्र माथुर ने एक कलाकार का प्रतिशोध का चित्रण कर दिया है ।

निष्कर्ष

हिन्दी साहित्य में कलाकार की प्रस्तुति विषय पर जाँच करने के लिए मैंने कविताओं, कहानियों और नाटकों को चुना है । इसमें नाटकों में कलाकार की प्रस्तुति अधिक मिलते है । कविताओं में कला का महत्वों और साहित्य रूपों के महत्वों पर आधारित कविताएँ हैं, लेकिन ललित कला के उपासक कलाकारों को कविता के पंक्तियों में मोड़ देना सरल नहीं होगा । लेकिन जिन कविताओं में कलाकार की प्रस्तुति है वे कलाकार के मन की अथाह रुदन ही है ।

कहानियों में प्रस्तुत कलाकारों के सामाजिक अन्तर्द्वन्द्वों का चित्रण है । समाज अैर व्यक्ति के बीच जो संबंध है यह हमें इनमें देखने को मिलते है ।

संदर्भ ग्रंथ

1. इन्द्रनाथ मदान – निराला – पृ. ७६

2. वही – पृ. ७७

3. वही – पृ. ७७

4. वही

5. अज्ञेय – असाध्यवीणा

6. वही

7. रामकमल राय – अज्ञेय सृजन की समग्रता – पृ. २३१

8. वही – पृ. २३२

9. वही – पृ. २३३

10. वही – पृ. २३४

11. डॉ. कमल प्रसाद पाण्डेय – छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि – पृ. ९४

12. नागार्जुन – सतरंगे पंखोंवाली – पृ. ४४

13. पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र — कला का पुरस्कार – पृ. २५

14. वही – पृ. २७

15. पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र — उग्र का कथा साहित्य एवं दार्शनिक विचार – पृ. ९

16. यशपाल की संपूर्ण कहानियाँ (ख्रण्ड २) – फूलों का कुर्ता – पृ. २२

17. मधुकर सिंह – रेणु की संपूर्ण कहानियाँ (भाग १)– पृ. २३९

अध्याय – ४

कलाकार का आत्मसंघर्ष - हिन्दी उपन्यासों में

समाज के भाव और रुचि को समग्रता, व्यापकता और गहनता के साथ व्यक्त करने की क्षमता केवल कलारूपों में निक्षिप्त है । डॉ. गोपाल सिंह के अनुसार, "शब्द कलाओं में उपन्यास ही एक ऐसी कला है जिसमें जीवन की प्रत्येक समस्या की पूरी-पूरी खोज की जा सकती है ।"[1]

उपन्यास के कथ्य और शिल्प में कालानुसृत बदलाव आया । इसका प्रमुख कारण सामाजिक परिस्थितियों के परिवर्तन ही है । रीति रिवाज़ों से रूढी ग्रस्त भारतीय समाज में औद्योगिक और वैज्ञानिक क्रान्ति ने सभ्यता और संस्कृति को नवीन दृष्टि दिया । यह मानव मूल्यों में परिवर्तन लाया ।

वर्जिनिया बुल्फ का विचार है कि "सभी मानवीय सम्बन्ध परिवर्तित हो गए है : स्वामी और भृत्य के, पति और पत्नी के, माता-पिता और सन्तति के, जब मानव सम्बन्धों में परिवर्तन आता है तब धर्म - आचार, राजनीति और साहित्य में भी साथ-साथ परिवर्तन होता है ।"[2]

स्वातंत्र्य प्राप्ति के पूर्व हिन्दी उपन्यासों में ईश्वर महिमा, राजाओं के यशोगान, मूल्यों पर आस्था रखने का उपदेश आदि विषय के रूप में आते थे । आधुनिक युग में उपन्यासकार की दृष्टि व्यक्ति पर केन्द्रित होती गयी है । "मूल्यों के विघटन व्यक्ति के अस्तित्व की संदिग्धता समाज द्वारा आरोपित आदर्शों आदि ने व्यक्ति को क्रान्तिकारी क्षुब्ध, विद्रोही संत्रस्त बना दिया है ।"[3] यह विक्षुब्धता कलाकार के मन-मस्तिष्क से कलारूप बनकर बहिर्गमन

करती है । एक ही समय विभिन्न व्यक्तियों को आवाहित करने के कारण कलाकार का मानसिक स्तर व्यक्ति से ज़्यादा कलुषित है । इसलिए कलाकार का मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों उपन्यास के विषय के रूप में रोचक है । कई उपन्यासकारों ने कला और कलाकारों की समस्याओं को आधार बनाकर रचनाएँ की है उसमें देवेन्द्रसत्यार्थी, मोहन राकेश, गिरीश आस्थाना, बदी उज्ज़मा, सुरेन्द्र वर्मा, मधुपशर्मा, अमृतलाल नागर और प्रकाशमनु आदि उपन्यासकारों के उपन्यासों को आधार बनाकर कलाकार पात्रों का आत्मसंघर्ष विषय का अध्ययन किया है ।

४.१ प्रतिनिधि उपन्यासों का सामान्य परिचय

४.१.१ कथा कहो ऊर्वशी – धार्मिक आस्थाओं की गाथा

देवेन्द्र सत्यार्थी जैसे एक यात्री के द्वारा रचा गया 'कथा कहो ऊर्वशी' की पृष्ठभूमि उडीसा का धैली गाँव है । पाथुरिया परिवार की कथा सुनानेवाला उपन्यास के नामकरण से ही यह समझ सकते हैं कि यह उस परिवेश की अनेक कहानियों की कहानी है । इस बृहद् उपन्यास में लेखक ने इस परिवेश पर आधारित पौराणिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक घटनाओं को संदर्भानुसार पिरोया है । कला और साहित्य को भाषानुगत कालानुगत सीमाओं को तोडने की शक्ति है । उडिया गाँव और वहाँ के समाज का चित्रण उस भाषा और देश से अपरिचित सत्यार्थी जी ने सुन्दर और अनूठे रूप में प्रस्तुत किया है । लोकगीतों के डोरों से उपन्यासकार पाठकों को उस परिवेश से बाँधते है ।

उडीसा का धौली गाँव की प्रसिद्धि अश्वत्थामा शिला के कारण है, जिसपर अशोक की राजाज्ञा अंकित है । मूर्तिकार चतुर्मुख और उनके परिवार वहाँ रहकर अपनी आस्थाओं को मूर्तरूप देते है । तीन भागों में बाँटा गया यह उपन्यास का पहला खंड 'संकल्प'

में चतुर्मुख के केलुकाका द्वारा निर्मित ब्रह्मदेव की मूर्ति की कहानी से कहानियों की शुरुआत हो रही है । सालों के बाद मूर्तिकार चतुर्मुख ने विष्णु की मूर्ति बनाकर उसे त्रिमूर्ति का अगला पडाव चढ़ा दिया । चतुर्मुख को एक ही आशा है कि इस त्रिमूर्ति में महादेव की मूर्ति अपना पोता नीलकण्ठ के हाथों से संपन्न होनी चाहिए ।

नीलकण्ठ को बुल्के साहब ने पश्चिमी मूर्तिकला का अध्ययन के लिए 'लन्दन' भेज दिया है । पाँच साल के बाद उसके आने की राह देखनेवाला चतुर्मुख नीलकण्ठ के हाथों से त्रिमूर्ति का संपूर्ण रूप देखने के लिए ललचाते है । लेकिन वापस आते समय लन्दन की युद्ध भूमि में छोड के आये प्रेयसी अलवीरा के यादों में डूबे नीलकण्ठ मूर्ती पूरा करने में अशक्त है ।

नीलकण्ठ और बुल्के साहब की बेटी अलवीरा के बीच का प्यार भारतीय और पाश्चात्य सभ्यता का मिलन है । इसके अलावा अपूर्व और कोइली, जागरी और सोना की प्रेमकथाओं को जोड़कर उपन्यासकार ने पहले भाग को रोचक बना दिया है ।

उस महान मूर्तिकार ब्रह्मा ने मानव रूपों की सृष्टि के लिए मूर्तिकारों की सृष्टि की । इस काहनी के द्वारा उपन्यासकार मूर्तिकला का धार्मिक संबंध को उजागर करते है । इस उपन्यास के मूल स्रोत के रूप में सत्यार्थी जी ने कोणार्क के शिल्पि विशु और उसके प्रेयसी कन्ध नारी ऊर्वशी की अपूर्ण मूर्ति का चित्रण किया है । यह उपन्यास को ऐतिहासिक धरातल से संबंध जोडते है ।

हिटलर ने आयोजित किए युद्ध विभीषिकाओं से कलुषित लन्दन को दिखाकर उपन्यासकार ने रचना को राजनीतिक परिवेश से बाँध दिया है । जागरी की पत्नी सोना राधा-

कृष्ण रास मंडली की नर्तकी बननी चाहती है । लेकिन नारी होने के कारण कला में आस्था रखने वाला परिवार के बडे बुज़ुर्गों से उसे अनुमति नहीं मिलती है । लेकिन जागरी ने उसकी नर्तकी बनने की आशा को सार्थक बना दिया है । ऐसी एक संदर्भ के चित्रण से कला के क्षेत्र में व्यापृत नर नारी भेदभाव को उपन्यास का भाग बना दिया गया है ।

दूसरा अंक 'साधना' में पहले अध्याय के संघर्ष की तंतु का परिणाम है । त्रिमूर्ति के पूर्तीकरण से विमुख नीलकण्ठ चतुर्मुख के मन में निराशा पैदा करते है । उसने निराशा को विषपान से आत्माहुति करके परिसमाप्त किया । दादा की मृत्यु के बाद अलवीरा की यादों से मुक्त होकर महादेवमूर्ति के निर्माण से नीलकण्ठ ने मूर्तिकला की टूटी हुई परंपरा को आगे बढ़ाया । अलविरा धौली में आकर नीलकण्ठ से मिलते है । गाँव छोडकर गायब हो गए अन्तराल और अपूर्व वापस आते है ।

स्वतंत्र भारत में नेहरूजी और गाँधीजी के जैसे महान व्यक्तित्वों के प्रभाव के कारण बदले हुए परिवेश का चित्रण इस उपन्यास में है । धौली गाँव के वातावरण के बदलाव से भारत के मूल्य परिवर्तन की ओर उपन्यासकार संकेत करते है । भारतीय कलाओं की रक्षा के लिए म्यूसियम आये । कला प्रशिक्षण के लिए विद्यालय भी ।

अलविरा से शादी करके नीलकण्ठ मूर्तिकला में व्यापृत होना चाहता था । लेकिन बदलते परिवेश में वह बुल्के साहब की सहायता से आर्ट स्कूल का प्रिंसिपल बन जाते है । उपन्यास के दूसरे अंक में भारतीय समाज के परिवर्तनों को ज़ोर देने के कारण मुख्य विषय कला से थोडा परिवर्तन आया है ।

तीसरे भाग में इन सब घटनाओं के निष्कर्ष के रूप में विशु की अपूर्ण नारी

प्रतिमा का निर्माण नीलकण्ठ ने किया है । अंत में पाठकों को शुभचिन्तक बनाने के लिए नीलकण्ठ के पुत्र रूपम की प्रस्तुति है । वह दादी से मिलने के लिए माँ-बाप के साथ आता है । चतुर्मुख और पोता नीलकण्ठ की मूर्तिशाला में रूपम का प्रवेश के द्वारा मूर्तिकार परंपरा के विकास यात्रा की ओर उपन्यासकार संकेत करते है ।

४.१.२ अन्धेरे बन्द कमरे – अन्धानुकरण की विपत्ति

भूमिका में उपन्यासकार स्वयं उपन्यास का परिचय ऐसे करते है कि — "यह आज की दिल्ली का रेखाचित्र ? पत्रकार मधुसूदन की आत्मकथा ? हरबंस और नीलिमा के अन्तर्द्वन्द्व की कहानी ? ज़रूर यह हरबंस और नीलिमा के अन्तर्द्वन्द्व की कहानी है । पत्रकार मधुसूदन यहाँ लेखक की जिह्वा है । 'अन्धेरे बन्द कमरे' में आधुनिकता की प्रक्रिया नगरबोध का परिणाम है ।"[4] नगर की पहलू महानगर दिल्ली के द्वारा प्रस्तुत की गई है । इसलिए दिल्ली भी इस उपन्यास का प्रमुख अंग है ।

उपन्यास का प्रारंभ नौ साल बाद मधुसूदन के लखनऊ से दिल्ली लौटने से होता है । वहाँ से हरवंश से मधुसूदन की मुलाकात हुई । वे दोनों एकसाथ कॉफी हाऊस में जाते हैं वहाँ से मधुसूदन के मन में भूतकाल के कई चित्र उभर आते हैं । दिल्ली की गन्दी कस्साब पुरा, पहली बार इरावती पत्र में नौकरी का अवसर, काफी हाऊस में नीलिमा, शुक्ला, जीवन भार्गव तथा शिवमोहन से भेंट, शुक्ला के प्रति उसके मन में उत्पन्न आकर्षण, नीलिमा से बिगड होकर हरबंस की लंदन यात्रा – ये सब मधुसूदन के मन में पन्ने पलटकर आती हैं । हरबंस की लन्दन यात्रा मधुसूदन की ज़िन्दगी में कई प्रकार के बदलाव लाई । हरवंश की यात्रा के बाद भी शुक्ला के आकर्षण में मधुसूदन काफी हाऊस में गए थे । लेकिन सुरजीत के साथ काफी हाउस में शुक्ला का बैठना मधुसूदन के लिए असह्य लगा । वह दिल्ली से नौकरी छोडकर चला जाता

है ।

हरबंस, इतिहास का प्रोफेसर और आधुनिकता के प्रति मोहग्रस्त है । इसकी जोश में वह पत्नी का नाम सावित्री से नीलिमा बदल देता है । वह उसे नृत्य, चित्र आदि कलाओं के शिक्षण देते है । आधुनिकता का अन्धानुकरण के कारण उसे शराब और सिगरेट पीने की ओर अभिमुख्र करता है, कई लोगों से उनका परिचय कराते है। रोज़ काफी हाऊस जाना लोगों से ख्रुलकर बातें करने और हँसने के मौके भी देते हैं ।

लेकिन जब से नीलिमा के आदतों में तथाकथित आधुनिकता का असर पड़ते है तबसे हरबंस में परंपरा के प्रति आग्रह उत्पन्न हो जाता है । गृहणी की अपेक्षा नृत्यांगना व्यक्तित्व को नीलिमा अधिक महत्व देती है । यह हरबंस को असह्य बन जाता है । हरबंस को पुराने संस्कारों को छोडना और आधुनिकता को तोडना दोनों मुश्किल की बात है । इसलिए उनके मन में हर वक्त आधुनिक और परंपरागत मूल्यों के प्रति संघर्ष उत्पन्न होता है ।

नीलिमा परंपरा पर अधिष्ठित एक सीधी-सादी औरत थी । लेकिन हरबंस की पत्नी होने के बाद वह शिक्षित और नृत्यकला में पारंगत हो जाती है । पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर जीना पसंद करती है । नीलिमा को उनकी नर्तकी की प्रचुर प्रतिभा पर अटल विश्वास है । वह नर्तकी के रूप प्रशस्त बनना चाहती है । अपनी ज़िन्दगी को नर्तकी के रूप में सफल बनाना चाहती है । प्रारंभ में नीलिमा अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ती के लिए पति के साथ कई बार शालीन निवेदन करती है । लेकिन हरबंस की दोहरी मानसिकता के कारण वह नीलिमा के नृत्य प्रदर्शन के आग्रह को एक नीच वृत्ति के रूप में मानती है ।

यह नीलिमा के अहम को प्रबुद्ध बनाता है । वह अपनी महत्वाकाँक्षा की पूर्ति

और वैयक्तिक स्वतंत्रता के लिए कई बार झगडा-बखेडा करती है । यह संघर्ष इस पति-पत्नी की ज़िन्दगी को रणभूमि बनाते है । इस अवस्था से मुक्ति पाने के लिए हरबंस लंदन जाते है। वहाँ के रास्ते में उनको नीलिमा से बिछुडने की व्याकुलता उत्पन्न हो जाती है । लंदन में जाकर वह नीलिमा को लंदन बुलाकर एक ख़त भेजता है । महात्वाकांक्षी नीलिमा अपने पति के साथ प्रेम भरी स्वच्छ ज़िन्दगी की इच्छा के कारण वहाँ जाती है । लंदन में उनको आन्तरिक संघर्षों के साथ आर्थिक कठिनाइओं को भी सामना करना पड़ा । धनोपार्जन के लिए नीलिमा बेबी सिंटर बन जाती है । अपनी नृत्यकला को नए मोड देने केलिए इच्छुक नीलिमा को बेबी सिटर के काम नीरस और ऊब भरी ज़िन्दगी बिताने के लिए मज़बूर पड़ती है ।

लंदन में नीलिमा की भेंट नर्तक उमादत्त से होती है उसके साथ यूरोप के दौर पर जाती है । उस यात्रा में वह बर्मी कलाकार ऊबानू से मिलती है । ऊबानू उसे इसलिए अच्छा लगती है कि वह नीलिमा के आदेशों को उनके गुलाम के जैसे पालन करता है । उसे लगती है कि इस तरह के व्यक्ति के साथ रहकर अपने अनुसार जीवन जिया जा सकती है । मानसिक स्तर पर दो ही दिन में वह ऊबानू के बहुत निकट आ गई लेकिन शारीरिक स्तर पर उसे मिलने से इनकार कर लेती है । मानसिक और शारीरिक स्तर के अन्तर्द्वन्द्वों ने नीलिमा को हरवंश के पास वापस कर पति के साथ जीने के लिए मज़बूर करा दिया।

एक सफल नर्तकी बनने की इच्छा उसे पति से दूर कराती है लेकिन सामाजिक और पारिवारिक मूल्यों के डोरों नीलिमा को पति के साथ रहने के लिए इच्दुक बना देती है । नीलिमा पति से प्यार करती है लेकिन उनके चंचल व्यक्तित्व को पूर्ण रूप से नफरत भी करती है । शुक्ला, नीलिमा की बहन वह जीजाजी के अनुमति के बिना सुर्जीत के साथ ब्याह करती है । इसके बाद हरबंस शुक्ला से कोई भी संबंध रखना नहीं चाहते हैं। हरबंस का अन्धा

मूल्यबोध इन दोनों बहनों के रिस्ते पर ख्राव डालता है ।

इस उपन्यास के द्वारा लेखक बाह्य एवं आंतरिक संघर्षों का स्पष्ट अनुभव दिलाता है । नारी होने के कारण परिवार में एक कलाकार को अभिमुख्र करनेवाली समस्याओं को नीलिमा के द्वारा व्यक्त किया गया है । इसके साथ कला, साहित्य और सभ्यता के नाम पर संस्थाओं में होनेवाली छल कपटों की प्रस्तुति भी इस उपन्यास का उद्देश्य है ।

४.१.३ धूप छाँही रंग – कला जीवन के लिए

यह एक बृहद उपन्यास है । इसका बडा हिस्सा युद्ध और इससे संबन्धित समस्याओं पर प्रकाश डालते है । लेकिन उपन्यास का नायक सुकांत एक चित्रकार है । इसमें सुकांत के दो विभिन्न परछाइयों पर उपन्यासकार प्रकाश डालते हैं । उपन्यास का आरंभ एक चित्रप्रदर्शनी से हुआ है । पूर्वदीप्ति पद्धति के द्वारा उनके सैनिक जीवन के विशद चित्रण उसमें हमें देख्रने को मिलते हैं ।

परिवार की आर्थिक और वैयक्तिक समस्याओं से मुक्ति पाने के लिए सुकांत सैन्य में भर्ति लेता है । सेनिक बनने की सैनिक शिक्षाएँ एक अनुभवी सैनिक के रूप में चित्रित करने में उपन्यासकार सफल हुआ है ।

अम्बाला छावनी की सिख्रलाई शिविर से सैनिक शिक्षा समाप्त कर सुकांत पूर्ण रूप से सैनिक बन जाते है । एक चित्रकार होने के कारण उसे प्रदर्शनी के लिए, पेइंट ब्रश और कानवास के लिए बडी रक्कम चाहिए इसकी कमाई की चाह है । उसे सैर करने में नयी-नयी जगह, नये नये रूप, रंग देख्रने की लालसा है । यह सैनिक होने से ही सफल हो जाऐंगा। इसलिए सुकांत एक चित्रकार के रूप में प्रशस्त होने के पहले एक सैनिक बनते है ।

बोलाराम के हेड क्वार्टर, सुडान, मिस्त्र, कोसाई, बागदाद, ख़रतूम, पश्चिमी रेगिस्तान आदि कई जगहों पर युद्ध के वास्ते वह चला जाता है । उपन्यास में वातावरण का चित्रण एक चित्रकार के अनुरूप छोटे-छोटे अंशों को भी छूकर किया गया है । इसके अलावा कई प्रकार के युद्ध और हबाई हमले के दारुण चित्र भी उपन्यासकार ने पाठकों की आँखों के सामने खींचा है । ऐसे एक हवाई हमले में सुकांत का मित्र मृणाल की मृत्यु हुई है । इस उपन्यास में सुकांत और मृणाल की मित्रता समाज की जटिल व्यवस्थिति से भिन्न उजागर कर दी गई है । मृणाल के अलावा जॉन, सुनील इन लोगों से हुए सुकांत की मित्रता, सुकांत के स्नेह भरी स्वभाव विशेष पर प्रकाश डालती है ।

सुकांत की शादी माँ-बाप ने पहले ही तय किया था । चपला नामक लडकी को पत्नी बनाने के लिए वह तैयार नहीं था । लेकिन माँ-बाप के ज़िद्द पर वह चपला को स्वीकार करने के लिए तैयार हो जाते है । चपला सुकांत की आशाओं को किसी भी प्रकार की बाधा न डालकर ज़िन्दगी आगे बढाती है । इस उपन्यास की दुःख भरी यादों में सुकांत की प्रेमिका शहनाज़ के शब्दों को भूल नहीं सकते है । उसकी मनद्रवित अंतिम यात्रा के द्वारा उपन्यासकार ने भारत के बँटवारा अैर उससे भारतवासियों पर आए हुए कष्टताओं पर प्रकाश डाला है । भारत के मुसलमानों पर, पाकिस्तान जनता का वैमनस्य भी इस उपन्यास में फैला है ।

चपला से शादी करने के तीन महीने के बाद सुकांत नैकरी से अवकाश पाकर दिल्ली में गए । वहाँ उसने अपनी चित्रकारिता में ध्यान किया । उन्होंने बनाए गए चित्रों की एक प्रदर्शनी का आयोजन किया । इस प्रदर्शनी में से उसकी मुलाकात जौहरी साहब से हुई है ।

पहले अध्याय में विभिान्न युद्धों अैर इसके पीछे ब्रिटीश सैनिकों द्वारा की गई कुनीतियों का विशद वर्णन है । दूसरे अध्याय में स्वतंत्र भारत के छोटे बडे व्यापारियों,

उद्योगपति-करोडपति बनने के लिए की गई कुनीतियों का वर्णन है । आज़ादी भारत की राजनीतिकता पर बुद्धिजीवी शिक्षित वर्ग अपनी आत्मा तक गिरवी रखकर स्वच्छ सुन्दर भौतिक जीवन की प्राप्ति करते हैं । कुछ लोग अपनी इच्छाओं को हासिल करते हैं । कुछ लोग वह पाने के लिए तडपते हैं । इच्छाओं की प्राप्ति लोगों को थोडा और माँगने केलिए ज़ोर देते हैं । इन सब प्रक्रियाएँ मानसिक धरातल को तनावों से झेलती हैं । ऊँची कुर्सी का ध्यान रखनेवाले मध्यवर्ग का सहानपुभूतिपूर्ण चित्र उपन्यासकार ने सुकांत के द्वारा खींच लिया है । एक चित्रकार की पूरे सुख-दुखों के चित्रों को धूप छाँही रंगों में उपन्यासकर ने रूपायित किया है । एक कलाकार की पूर्ण व्यथाओं को सुकांत में चित्रित नहीं किया गया है बल्कि एक चित्रकार को साधारण व्यक्ति के रूप में समाज की गतिविधियों के साथ जीने के लिए किन-किन संघर्षों को सामना करना है इसका संपूर्ण चित्रण इस उपन्यास में उदभासित है ।

४.१.४ एक चूहे की मौत – संवेदनाओं का मानवीकरण

फैंटसी के कारण चर्चित 'एक चूहे की मौत' पश्चिम संकेतों को अपनाने वाला हिन्दी का पहला उपन्यास है । बदीउज्ज़माजी ने इस उपन्यास के पात्रों को नाम देने के बदले वह,प, ग आदि प्रतीकों से व्यक्त किया है । यह आधुनिक समाज में मानव के संघर्षों की समानता के कारण है । यहाँ व्यक्ति के नाम को कोई स्थान नहीं हर एक कई प्रकार की मानसिक व्यथाओं के शिकार है ।

आज़ादी के पहले और बाद के मूल्य परिवर्तन इस उपन्यास के संघर्ष का आधार है । खेतीबाडी से जीवनोपार्जन करने वाले भारतीयों को बंधे कमरों में फाइलों के पास बाँधने का पश्चिम कूट तंत्र अैर उसमें फँस गए कुछ नव मानवों को हमें इस उपन्यास में देखने को मिलते हैं । भारत के अनमोल प्रकृति-सौन्दर्य और संस्कृति के मिलन ने जनता में स्वतंत्र

कलाकारिता को उद्दीप्त कर दिया । अंग्रेज़ों के शैक्षिक और आर्थिक कुटिल नीति इस प्रतिभा को फाइलों में लालपट्टी बाँधकर रखने की प्रक्रिया से उत्पन्न संघर्षों की तस्वीर दर्शनीय है । सहज कलाकार को यह अवस्था पानी से बाहर आई मछलियों से अधिक भयानक है । वे अपने रास्ता बनाने के लिए हर क्षण तडपती हैं और अंत में असमर्थ होकर ज़िन्दगी से मुक्ति प्राप्त करती हैं ।

इस उपन्यास का मुख्य पात्र 'वह' है । 'वह' एक तीसरे दर्जे का सरकारी कर्मचारी है और आधुनिक समाज के मध्यवर्ग का संघर्ष भरी यान्त्रिक मानव का प्रतीक है । उसके अलावा ग, त, प, सोनिया और लडकी आदि इसके अन्य पात्र है । उपन्यास में 'ग' और 'प' दोनों चित्रकार है । ग के विद्रोही भावना उसे अनेकों में एक बनाती है । वह माँ की मृत्यु के बाद सरकारी कर्मचारी के बंधनों से मुक्ति पाकर इच्छा के अनुसार स्वतंत्र चित्रकार बनते है। यह विद्रोही भावना व्यक्ति को धारा की विपरीत दिशा में तैरेने की शक्ति देते है । लेकिन सामान्य जगत् की ज़िन्दगी उसे कई कठिनाइयों की कुआओं में धक्का मारकर डालती है । रोटी कमाने के लिए उसे अपनी सृष्टियों को भेजना पड़ता है। उनका अनमोल चित्र चूहेमार वह 'प' को भेजते है । वह केवल एक चित्र नहीं 'ग' के अन्तर उत्पन्न आधुनिकता के संघर्षों से परिवर्तित मानव की रूपरेखा है । यह उपन्यास के नामकरण और कथन शैली को कई प्रकार से प्रभावित करनेवाला चित्र है। उपन्यास में सरकारी ऑफीस को चूहे खाना फाइलों को चूहे और कर्मचारियों को चूहेमार के रूप में प्रस्तुत किया गया है । यह सब 'ग' का 'चूहेमार' नामक चित्र का प्रभाव है ।

दूसरा पात्र 'प' वह अनैतिक समाज का चालाकी मानव का प्रतिरूप है । 'प' भी एक चित्रकार है । लेकिन समाज को रास्ता दिखाने वाले कलाकार के दायित्वों को वह

मानते ही नहीं। वह मेहनत के बिना छल-कपट के द्वारा दूसरों की कमाइयों को अपनाना चाहते है । आधुनिक समाज की टेढे मोढे कुटिल नीति इस तरह की कपटता को महत्वपूर्ण स्थान देती है । इसलिए 'प' को इस प्रवृत्ति से धन और नाम प्राप्त कर सकता है । उसे समाज में कलाकार की उच्च जगहों पर विराजने का अवसर मिलते हैं । वह चित्रप्रदर्शनी आयोजित करते है, उसमें बिना चिचक से 'ग' के 'चूहेमार' नामक चित्र को भी अपने नाम से प्रस्तुत करता है ।

सच्चे कलाकार की दयनीय स्थिति को व्यक्त करने के साथ कलाजगत में व्याप्त छल कपटों को भी इस उपन्यास में चित्रित किया गया है ।

'ग' के 'चूहेमार' चित्र को 'प' की प्रदर्शनी में देखकर 'वह' कायान्तरण प्रवृत्ति से एक बडा चूहा बन जाता है । यह अन्तर्मन में दमित संघर्षों का बहिर्स्फुरण है । व्यक्ति कभी कभी दमित संघर्षों से पागल बन जाते है तब उसमें मानवीयता की बदली मृगीयता का प्रभाव पडते है इसका साकार चित्रण है यह ।

यह उपन्यास आकार से लघु उपन्यास की श्रेणी में है लेकिन शब्दहीन संवेदनों से उपन्यासकार इसको बृहद उपन्यासों की श्रेणियों में एक बनाते है । उपन्यासकार ने 'वह' की विभिन्न संवेदनाओं को मानसिक रूपान्तरण कर इसके अन्य पात्रों का रूपीकरण किया है । अंत में पूरे संघर्षों से मुक्त मानव का काल्पनिक संकल्प भी है । यह एक कलाकार के लिए असंभव है ।

४.१.५ मुझे चाँद चाहिए – एक सफल सितारे की चमक

भारत के सामाजिक परिवेश में नारी का स्थान हर क्षेत्र में पुरुषों से कुछ पीछे है । ऐसी एक परिस्थिति में मध्यवर्गीय परिवार से एक स्त्री को रंगमंच और फिल्मी जगत में

स्वयं परिश्रमी बनकर आने की स्थिति कथनीय है ।

शाहजहाँ पुर का विशनदास शर्मा मध्यवर्गीय परिवार का अंग है । वह प्राथमिक स्कूल का अध्यापक है । उसकी बेटी सिलबिल निडर महत्वाकांक्षी तथा परंपरागत मूल्यों के प्रति विद्रोही है । हाइस्कूल काल में ही अपनी इच्छा के अनुसार विरासत को लात मारकर यशोदा शर्मा उर्फ सिलबिल ने नाम बदलकर वर्षा वशिष्ट रखा ।

'अपना भविष्य', इस विषय पर वर्षा का जवाब क्लास टीचर दिव्या कत्याल को काफी प्रभावित किया। मध्यवर्गीय परिवार की नारियों की सीमित दायरों को समझनेवाली लडकी को कत्यालजी ने अपने पैरों पर खडे होने की रास्ता दिखाया । प्रतिमाह डेढ़ सौ रुपए की ट्यूषन का आयोजन करके फीस के रुपए चुकाने के लिए उसे स्वयं तैयार किया । सामाजिक परिवेश को सपाठ करनेवाली निडर लडकी को अपनी महत्वाकांक्षाओं को सार्थक बनाने के लिए हर कदम दिव्या कत्याल का सहारा मिला ।

'अभिशप्त सौम्यमुद्रा' नाटक में भाग लेने का अवसर ने उसकी ज़िन्दगी का दरवाज़ा खोल दिया । यह नाटक ने वर्षा के अन्तर्मन में सुषुप्त अभिनेत्री को जगाकर उसकी ज़िन्दगी के राह बदल दिया । 'अभिशप्त साम्यमुद्रा' नाटक के ज़रिए ज़िन्दगी के बदलते परिवेश ने उसे स्वतंत्र बना दिया । लखनऊ में अपनी अभिनय प्रतिभा को आगे बढ़ाने का अवसर उसे मिला ।

'नाशनल स्कूल ऑफ ड्रामा' का साक्षात्कार पत्र देखकर भाई और परिवारवालों में उत्पन्न प्रतिशोध की भावना ने उसे गुसलखाने में बन्द करने तक बढ़ा दिया । लेकिन छोटे भाई के इशारे से आए हुए डॉ. सिंहल और मिसेज़ सिंहल के सहारे से वर्षा को नाशनल स्कूल

ऑफ ड्रामा के साक्षात्कार में भाग लेने का अवसर मिली । साक्षात्कार में भाग लेनेवाले अफसरों की प्रशंसा का पात्र होनेवाली वर्षा वशिष्ट स्कूल ऑफ ड्रामा के ट्रेनिंग से सफल अभिनेत्री बन गयी । विभिन्न नाटक, विभिन्न पात्र ने उनके मानसिक पटल में विभिन्न विचार-विकारों के ज्वार भाटा उत्पन्न किया । हर्षवर्धन, नाटक सहयात्री, उससे जो लगाव वर्षा के अनतर्मन में उत्पन्न हुई ऐसी एक भावना और किसी से नहीं थी । फिर भी फिल्मी अभिनेत्री बनने की इच्छा उसे किसी अलग रास्ते में भटकने से रोकी । हर्ष और उनके परिवार शादी के लिए तैयार थे । अपनी कलाकारिता को घोंट कर एक परिवार बनाने के लिए वर्षा तैयार नहीं थी ।

बंबई फिल्म इंडस्ट्री से जुडती वर्षा को सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का पुरस्कार मिली । 'जलती ज़मीन' फिल्म की विजय गाथा ने उसे नायिका की भूमिका भी प्रदान किया। हर जगह उन्नति के शिखरों पर विराजने वालों को नीचे दिखाने का षड्यंत्र चलते है । छूटे पब्लिसिटी के लिए व्यक्ति हत्या करने वाले फिल्मी कार्यरतों को उसने तीखे स्वर में भर्त्सना की।

कलाकारिता से ज़्यादा नाम और धन के लिए तरस फिल्मी समाज से छुटकारा पाकर वर्षा पुनः रंगमंच का भाग बन गयी । 'चार मौसम', 'पैलेस आफ होप' आदि नाटकों के अभिनय ने वर्षा को रंगमंच पर पहले की तरह नामी बना दिया ।

अभिनेत्री बनने केलिए उसे परिवार से अलग होना पड़ता था । उनके पुनः समागम वर्षा की ज़िन्दगी के अनमोल घटना थी । लेकिन कलाकार के कठिन मानसिक संघर्षों और उसमें सहारा लेकर आए शराब और नशे का प्रयोग वर्षा के परिवार लोगों को नासमझ और असहनीय थे ।

वर्षा के साथ ज़िन्दगी शुरू किए गए हर्षवर्धन को नशा खोरी होने के कारण

बच्चा पैदा होने के पहले इहलोक से विदा लेना पडा । हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद कई नौजवान वर्षा को प्रेम पाश में बाँधने और ब्याह करने के लिए आये थे । लेकिन वर्षा ने उनकी बाकी ज़िन्दगी बेटे के लिए और उनकी प्रगति के लिए अर्पित किया । उसके मन में एक ही इच्छा थी कि अपने बच्चे को इच्छाओं के अनुसार जीने का वातावरण मिलना चाहिए। उनकी इचछाओं और प्रगति को रोकने के लिए धन, परिवार और धर्म जैसी बाधा नहीं होनी चाहिए।

४.१.६ दूध गाछ – परंपरा की विकास यात्रा

इस उपन्यास में कलाकार को सृष्टि की मूर्ति माँ के रूप में प्रस्तुत किया गया है । देवेन्द्र सत्यार्थी के अन्य उपन्यासों के समान यह उपन्यास भी आँचलिकता और लोकगीतों से संपुष्ट है । माँ और कलाकार दोनों सृजन की वेदना झेलने वाले हैं । इस सुखदायी दर्द की समानता को इस उपन्यास में चित्रित किया गया है । माँ अपनी परंपरा के क्रमिक विकास के लिए कितने आशावान होती है उसी प्रकार गुरु अपनी कला परंपरा के विकास के लिए तरसते है । गुरु रुद्रपद्म शास्त्रीय संगीत के विकास के लिए सदा कर्मरत है । फिर भी सुपुत्र गोविन्दन शास्त्रीय संगीत से विमुख होकर संगीत को पैसे से मोल-तोल करने फिल्मी जगत को अपनाते हैं । यह रुद्रपद्म के अन्तर्मन को सदा दुखी बनाता था । नियति का खेल ने रुद्रपद्म की संगीत यात्रा को आगे बढ़ाने के लिए मूर्तिकार का पुत्र शडधरन को शिष्य बनाया । वह गुरु की महिमा को शिरोद्धार कर गुरु के रास्तों को अपनाने वाला उत्तम शिष्य था । उसे गोविन्दन की चमकीले फिल्मी संगीत से कोई भ्रम नहीं । वह गुरु की अपार संगीत प्रतिभा के आगे नतमस्तक होकर शासत्रीय संगीत के विराट संसार को प्रकाशमय बनाते है ।

केरल की 'वर्कला' को पृष्ठभूमि बनाने से सत्यार्थी जी दक्षिण भारत के सांस्कृतिक और प्रकृतिक विरासतों को उजागर करते है । उपन्यास का आरंभ वर्कला रेलवे

स्टेशन से होता है । कलाभिरुचि में केरल के लोगों की चाव वे स्टेशन से मिले भिख्रारी बच्चों के संघ के अवतरण से ही पाठकों को समझाते हैं । वर्कला का खुला आसमान, समुद्र, रेत, नारियल के पेड सब कला के प्रेरणा दायक हैं । आँख्रों देख्री वातावरण चित्रण से देवेन्द्र जी की यात्री की पूरा प्रयुक्ति इस उपन्यास में देख्रने को मिलती है ।

रुद्रपद्म की वर्षागाँठ पर आयोजित संगीत सभा और सुप्रसिद्ध गायक फैयास ख्राँ की प्रस्तुति, यह उपन्यास को काल्पनिकता से, ऐतिहासिकता को जोडने वाली हिस्सा है ।

गोविन्दन का फिल्मी संबंध के विवरण के द्वारा उपन्यास में फिल्मी जगत के ख्रोख्रले छल-कपट वातावरण का प्रदर्शन किया है । कला को रुपए से मोलतोल करने की प्रवृत्तियाँ और कला की बदहालत चित्रण आदि से उपन्यास विभिन्न प्रकार के घटनाओं से संपुष्ट हैं । सच्चा कलाकार का आविर्भाव विरुद्ध परिस्थिति से भी होता है । इसके उदाहरण के रूप में अभिनेत्री इरा का अवतरण किया है । एक वेश्या के औलाद होते हुए भी सांस्कृतिक और वैयक्तिक तौर पर पूर्ण रूप से गुणी पात्र की सृष्टि कीचड में कमल की भाँति मोहजनक है । सच्चे कलाकार की प्रस्तुति शङ्धरन द्वारा कितना सफल है उतना ही सफलता इरा की प्रस्तुति में है ।

रुद्रपद्म की मृत्यु का वर्णन हर एक कलाकार का स्वप्न है क्योंकि कला प्रकटन के बीच में मंच पर गीत गाते-गाते उसकी आत्मा परलोक सुधार जाती है । यह शंङधरन को गंभीर बनते है । वह गुरु की आत्मकथा छापकर प्रकाशन करते है। फिर गोविन्दन के साथ बंबई जाकर 'गुरुदेव' नाम से गुरु महिमा को फैलाने के लिए गुरुदेव नामक फिल्म का निर्माण करते है । ऐसे गुरु रुद्रपद्म का श्रेय वर्कला के बाहर बंबई वालों को भी अनुभव करने का अवसर मिलते है ।

बंबई से वापस आते ही शंखधरन गुरु पदों के पीछे जाकर शास्त्रीय संगीत की परंपरा को नई कडियों से बाँधने की प्रवृत्ति शुरू करते है । गुरु रुद्रपद्म के इच्छा के अनुसार रुद्रपद्म का 'चिता भस्म' मछली टोली के पास समुद्र में बहाता है । शंखधरन को विश्वास है कि इस कर्म से रुद्रपद्म का अगला जन्म उनकी इच्छा के अनुसार मछली टोली में ही होगा । इसलिए शंखधरन ने संगीत परंपरा की नयी कडी की खोज मछली टोली में किया है । वहाँ से संगीत के क्रमिक विकास की अगला कडी के रूप में पंचानन नामक मछुआरे बालक को शंखधरन शिष्य के रूप में स्वीकार करते है । उपन्यास के अंत में इरा और शंङधरन की मुलाकात से सच्चे कला का क्रमिक विकास की प्रतीक्षा हमें देखने को मिलती है । उपन्यास के आदि और अंत रेलवे स्टेशन से होने से उपन्यासकार ने कला परंपरा का अविराम विकास का चित्रण प्रतीक के रूप में व्यक्त किया है।

४.१.७ आखिरी अढाई दिन – स्रष्टा के मोहभंग का रुदन

यह पुरानी हिन्दी फिल्मी अभिनेत्री मीना कुमारी की पाण्डुलिपियों को आधार बनाकर लिखा गया उपन्यास है । साहित्य, आकाशवाणी और फिल्मी जगत् से संबंध के कारण कला जगत की असली परछाइयों को प्रस्तुत करने में उपन्यासकार को सफलता मिली है ।

यह उपन्यास कला के क्षेत्र में नारी की विडंबनाओं की दुःखपूर्ण गाथा है । फिल्मी जगत के खोखले संबंधों को उजागर कर छल कपट की बवंडर में पडे फिल्मी कलाकारों के प्रतीक के रूप में मीनाकुमारी का चित्रण हुआ है । गरीबी की कठिनाइयों से मुक्त होने के लिए अपने ज़िन्दगी के सुखमयताओं को त्याग करने वाली मीनाकुमारी की ज़िन्दगी पाठकों की आँखें भर देती है ।

'आखिरी अढाई दिन' नामकरण मृत्यु के परदे गिरने के पहले के कष्टपूर्ण अढाई दिन की कहानी है । व्यक्ति अपने अन्दरमन में पर्दा डालकर रखा गया घावों का खुला प्रदर्शन है यह उपन्यास । कभी-कभी यह पाठकों के मन में भी मनहूसियाँ पैदा करते है ।

मीनाकुमारी का जन्म ही अनचाही औलाद के रूप में हुआ । फिल्मी जगत के रंगीले परिवेश से आकृष्ट होकर घर परिवार को छोडकर बंबई की गलियों में असहाय होने वाले माँ-बाप की गोद में बेटियों की संख्या बढ़ने से डर और निराशा का आविर्भाव आश्चर्य की बात नहीं । इसलिए पिताजी उसे यतीमखाने की सीढ़ियों पर छोडते हैं । सिर पर खींची हुई ज़िन्दगी की रेखा लंबी होने के कारण यतीमखाने की सीढ़ियों से माँ ने उसे ज़िन्दगी में वापस कर दिया । ज़िन्दगी की कष्टपूर्ण नियति से मुक्ति आसान नहीं ।

माता-पिता का फिल्मी संबंध ने मीना कुमारी और उनकी बहन को फिल्मी अभिनेत्री ही बना दिया । मीनाकुमारी के अन्दर जो सहज कलाकार की प्रतिभा है, उसने उसे इस क्षेत्र में ज़्यादा अवसर प्रदान किया । ज़िन्दगी के आखिरी-अढाई दिन में मीनाकुमारी शैशव में ही परिवार की आशा की किरण बनने से उत्पन्न सुख और खोए हुए शैशव की दुख स्मृतियों को पाठकों से बताते हैं ।

मीनाकुमारी के किशोरीपन का आगमन ने फिल्मी जगत को भी प्रभावित किया । वह बालनटि के पद से हीरोयिन के पद पर बदल गयीा । धन दौलत के आदर-सम्मान और प्रेम से लथपथ मीनाकुमारी ज़िन्दगी के मनमोहक अवसर से गुज़र करती थी। यह केवल मीनाकुमारी को नहीं पूरे परिवार को बदल दिया था । पिताजी को ज़िन्दगी आगे बढ़ाने के लिए धन चाहिए था फिर वह एक लालसा का रूप में बदल गया। पिताजी ने ज़्यादा धन देने वाले निर्देशकों के साथ काम करने के लिए मीनाकुमारी को मज़बूर कर दिया । ज़िन्दगी के रास्ते में

हाथ थाम लेने वाले सहकर्मियों को इनकार कर केवल धन को इशारा लेकर चलना मीनाकुमारी के लिए दुख़ की बात थी । उसने पिताजी को रोकने का विफल श्रम किया । यह मीनकुमारी को गुलामी ज़िन्दगी में थका मार दिया। पिताजी के आदेश के बिना किसी से मिलकर बातचीत करने की भी आज़ादी उसे नहीं थी । इससे मीनाकुमारी के मन में विद्रोह की भावना उत्पन्न हुई ।

हिन्दी फिल्मी इंडस्ट्री के हिट मेकर ख़मंडी कमाल अमरोही के छल की जाल में फँस होने की स्थिति परिवार वालों की लालसा का परिणाम ही है । करुणार्द्र बचपन और सुनहरे किशोरीपन के बाद दर्दनाक भविष्य के बारे में वे सोचते भी नहीं । पिताजी के जिन बंधनों से मुक्ति वह चाहती थी उन बंधनों से उसे मुक्ति नहीं मिली और उसके साथ नए बंधनों का आविर्भाव भी हुआ । अमरोही के लिए मीनाकुमारी सोने के अंडे देनेवाली मुर्ग थी ।

गरीबी के काले चेहरे पर प्रकाश डालने के लिए उसने अपने चेहरे पर मैकअप डाली । लेकिन अन्दर ही अन्दर वह एक कच्ची नारी थी । शादी होने के बाद माँ बनने की इच्छा उसके मन में जागी । माँ बनने से नष्ट हो जाने वाले हीरोइन का स्थान और अर्थ राशी यह सब अमरोही जैसे व्यापारी केलिए असहनीय था। इसलिए मीनाकुमारी को 'गर्भपात' भी करनी पडती थी । दुख़भरी ज़िन्दगी से रक्षा पाने के लिए शराब से सहारा लेने से शारीरिक तौर पर ख़राब हुए मीनाकुमारी महाउदर बीमारी का शिकार बन गयी । सूजन से भरा पेट पर हाथ फेर कर मीनाकुमारी ने सोचा यह किसी बच्चे को पैदा करने के लिए तो कितना ख़ुश नसीब होगा ।

सुख़-दुःख़ सम्मिश्र ज़िन्दगी को पात्रों में रुपायित करते समय अपने ज़िन्दगी के

दुखों की बोरों पहनाए करती थी । यह कलाजगत की एक मात्र नारी का चित्रण नहीं अधिक से अधिक नारियों की ज़िन्दगी इससे बेहत्तर नहीं ।

४.१.८ अमृत और विष – अनुभवों के विभिन्न ज़माने से एक यात्रा

साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित उपन्यास में साठ साल के जीवन्द अनुभवों के चित्रण है । पुराने दो ज़माने से लेकर आधुनिक समाज की यान्त्रिक ज़िन्दगी की विसंगतियों का अनुभव करानेवाला उपन्यास वैयक्तिक और सामाजिक संघर्षों को उजागर करने में सफल हुआ है ।

इस उपन्यास का नायक एक लेखक है, ख़ास तौर पर एक उपन्यास लेखक है । षष्टिपूर्ति समारोह में विराजमान उपन्यासकार के मन में ज़िन्दगी की विभिन्न पहलुएँ फिल्मी दृश्यों के समान उमडकर आती हैं । लाला राधेलाल, उपन्यासकार के परदादा उससे लेकर उसके दादा सदानन्द और पिता किशोरीलाल की ज़िन्दगी की मार्मिक घटनाओं का परिचय कराते उनके अनुभवों की जडों की मज़बूती दिखाते है ।

१९०० ई. में अरविंद शंकर का जन्म हुआ वह भी पिता के समान शिक्षा में पटु था । पत्नी माया, दो बेटियों और तीन बेटों से अनुग्रहीत लेखक को किसी प्रकार के सहारा और प्रेम किसी से भी नहीं मिलते हैं । उनका बडा बेटा विनयशंकर रेलवे विभाग में है, इसलिए वह गोरख्रपुर में सपरिवार रहता है, मँझला बेटा भवानी ने पिछले तीन वर्षों से कोई संपर्क रख्रा ही नहीं । अन्तरजातीय विवाह होने के कारण उनकी बहु और बेटे मायके में है। छोटा बेटा उमेश ने दूसरी बार आइ.ए.एस की आरंभिक परीक्षा दी है वह पिताजी के परिचितों और मित्रों की सहायता से पदवी हासिल करने के लिए परिश्रम करते रहते है । बच्चों में सबसे स्वर्थ उमेश

से किसी भी प्रकार की सहायता उपन्यास लेखक नहीं चाहते है । उमेश से बडी एक बेटी है अरुणा, उसका विवाह छह वर्ष पहले कर चुका अब तक उसका कर्ज पूरा नहीं हुआ। सबसे छोटी वरुणा चार वर्षों से क्षय से पीडित है । उसके इलाज भी एक पिता का कर्तव्य है । ऐसे विभिन्न पारिवारिक संघर्षों से पीडित लेखक आर्थिक कठिनाई से भी त्रस्त है । आज़ादी के बाद निस्वार्थ देशवासियों और ईमानदार व्यक्तियों को मूर्ख बनाकर पैसे वाले तथाकथित बडे आदमियों के हाथ में राष्ट्र का भविष्य घोंट जाने से दुखी लेखक की षष्टि पूर्ति के सम्मान समारोह चल रहे हैं ।

मंच पर उसे अभिनंदन करने के लिए नगर कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष है, उसका रिश्तेदार ने लेखक का पैतृक ज़मीन पिछले दो वर्ष पहले जबर्दस्ती अपने हिस्से में मिलाने की कोशिश की थी । तब उसने इस अध्यक्ष को एक खत लिखा था । दुर्भाग्य से उसका उत्तर उसे अभी भी नाराज़ की अग्नि में बिठा देते है । "आप तो समाजवादी है आपको ज़मीन की आवश्यकता नहीं और उन्हें आवश्यक है । इसलिए उन्हें ले लेने दीजिए ।" यह खत प्रधानमंत्री को दिखाकर उसने अपनी संपती की रक्षा की । तबसे लेकर वह लेखक का परम भक्त है । लेखक का पुत्र उमेश, आइ.ए.एस पदाकांक्षी के सुझाव पर यह समारोह का आयोजन हुआ है वह इस आयोजन द्वारा अपने भविष्य को चमकाना चाहता है ।

ऐसी एक संघर्षभरी अवस्था में लेखक ने अपनी विकासयात्रा के विवरण के बहाने जीवन का सारा पाप-पुण्य को वहाँ खुला देता है । इससे तंग होकर उमेश अपने घर परिवार छोडकर चला गया । ऐसी एक परिस्थिति में ज़िन्दगी को आगे बढ़ाने के लिए त्रस्त लेखक एक नया उपन्यास लिखने की शुरुआत करते है । उस उपन्यास में पुरोहित पुत्ती गुरु का पुत्र रमेश को लेखक की जिह्वा बनाकर समाज के विभिन्न विसंगतियों के प्रति वह विद्रोह करते

है । उस उपन्यास में लेखक ने अन्तर्जातीय और विधवा विवाह का प्रोत्साहन रमेश और रानी के ब्याह से करते है । लच्छू के पात्र के द्वारा रजनीतिक भ्रष्टाचार से भडके हुए युवापीढी का चित्रण किया गया है । केशोराय की बारहरदी के संघर्ष के द्वारा सामाजिक संघर्षों में युवापीढी का स्थान को भी प्रस्तुत किया गया है । जिन विषयों को लेखक ने उस उपन्यास में जोड दिया है उसमें लेखक की ज़िन्दगी की यथार्थता का काल्पनिक रूप है ।

अमृतलाल नागर ने इस उपन्यास के द्वारा समाज के पाप पुण्यों को एक लेखक की आँखों से दिखाने का प्रयास किया है । यह पाठकों को स्वयं लेखक बनाकर उनकी मानसिक विसंगतियों को अनुभव कराते है ।

४.१.९ पापा के जाने के बाद – नींद से उठने के पहले दो शब्द

यह उपन्यास का एक नया मोडल है । इसमें कथन की शैली इंटर्व्यू के रूप में चलती है । लेखक प्रकाश मनु अपने प्रयोगात्मक उपन्यास की अलग शैली से अनजान नहीं । इसलिए उपन्यास के पहले पन्ने में ही उसने इसे उपन्यास मानने का प्रस्ताव किया है ।

'पापा के जाने के बाद' मशहूर चित्रकार वसंतदेव की ज़िन्दगी पर आधारित उपन्यास है । उनकी मृत्यु के बाद पुत्री से करनेवाले चार दिन के इंटर्व्यू और वसंतदेव की डायरी से मिली घटनाएँ आदि इस उपन्यास में समेट की गई हैं ।

कलाकार के आत्मसंघर्षों को कलाकार ने अपने शब्दों में कई साहित्यिक विधाओं में प्रस्तुत किया है। यहाँ कलाकर का संघर्ष का चित्रण एक चित्रकार की बेटी के द्वारा दिखाया है । समाज की विसंगतियों से संवेदनात्मक कलाकार की प्रतिक्रिया को बाह्य जगत कला के रूप में समझ जाते है । लेकिन सृष्टि का वह उथल पुथल की आधार प्रतिक्रियाओं को

परिवार वालों को सहना पड़ता है । इस उपन्यास में कलाकार का संघर्ष का कच्चा रूप प्रदर्शित किया गया है उसके साथों साथ संवेदनात्मक कलाकार के साथ जीनेवाले परिवार के आत्मसंघर्षों का पूरा चित्र भी इस उपन्यास में देख्ने को मिलते है ।

चित्रकार वसंतदेव की पुत्री नंदिनी उनके पिता को प्यार और सम्मान करती थी। लेकिन उनके शब्दों में कहीं कहीं पिताजी से किए नफरत की सूचनाएँ भी है । पाँच साल पहले एक लंबी बीमारी के कारण ख़ून धूककर उसकी मृत्यु हुई । इसके बाद नन्दिनी और माँ अकेले हो गयी । नंदिनी की राय में वसंतदेव ने उसकी मृत्यु को मोल कर लिया था । ऐसी सोच-विचार से नंदिनी ने कई बार पिताजी से उनके मृत्यु के पहले बुरा व्यवहार किया था ।

कलाकार की अतिसंवेदनात्मकता वसंतदेव के पात्रीकरण से उपन्यासकार ने व्यक्त किया है । सृजन के सशक्त धक्के से, नाम दौलत से भरपूर परिवार को छोडकर दिल्ली में आये वसंतदेव को छोटे-बडे काम के बोरे उठाना पड़ा था । प्रूफ रीडिंग की छोटी कमाई से अपने सृजन की महत्वाकांक्षाओं को सामने करने वाले वसंतदेव को समाज की कटु नीतियों को कई बार सामना करना पड़ा ।

सृजन की महानता पर पहला प्रभाव उसकी पत्नी को ही हुआ । वह उसके ससुख्र परिवार को छोडते वसंतदेव के साथ कष्टमय ज़िन्दगी को अपनाते हैं । ज़िन्दगी की कष्टता उसे किसी भी प्रकार दुख्री नहीं बनाती थी । वह पति की कलाकारिता पर उतनी मोहित थी कि वह स्वयं घर परिवार की आर्थिक बोझ उठाता था। किसी भी प्रकार के बाह्य संघर्षों से वसंतदेव को प्रताडित करने के लिए उसकी पत्नी तैयार नहीं थी । वसंतदेव ने अपनी डायरी में पत्नी गार्गी को अनमोल रत्न कहा है ।

इस उपन्यास को चार दिनों में बाँटा है । पहले दिन रोहनपुर गाँव का चित्रण है वहाँ वसंतदेव पत्नी गार्गी और बेटी नंदिनी रहते थे । पिता की मृत्यु के बाद उसका एक आराधक पत्र रिपोर्टर चंदानी साहब की मुलाकात नंदिनी से हुई है । फिर इस उपन्यास की यात्रा चंदानी साहब और नंदिनी के बीच के इंटर्व्यू के रूप में आगे बढ़ाती है । पहले दिन में पिता-पुत्री के बीच की सम्मिश्र संवेदनाओं की ज़िन्दगी का चित्रण है ।

दूसरे दिन नंदिनी से मिलने के पहले रात में चंदानी साहब को वसंतदेव का स्वप्न दर्शन हुआ है । इससे कलाकार की ज़िन्दगी की यथार्थताओं का चित्रण उस कलाकार के माध्यम से ही स्पष्ट किया गया है । इस स्वप्न दर्शन से चंदानी साहब को चित्रकार की डायरी की सूचना मिलती है । दूसरे दिन के इंटर्व्यू में चित्रकार वसंतदेव और पत्नी गार्गी का मिलन की कहानी है । पत्नी के रिश्तेदारों द्वारा किया गया विद्रोहों की बातें एक रोमांचक फिल्म के रूप में चित्रित हुई है । गरीबी में तड़पते हुए भी शिक्षित पत्नी को घर के बाहर काम करने से वह रोकते थे । गार्गी को पति की कला सपर्या पर पूर्ण विश्वास थी। उसके अन्दर के सच्चे कलाकार को आने वाले दिनों में लोग पहचान करेंगे । चित्रकला को वह कभी भी पैसे के माल नहीं समझते थे । उनके परिवार में उसकी पत्नी भी उनकी सृष्टि को पैसों से मोल-तोल करने के लिए तैयार नहीं थी । लेकिन नंदिनी को ज़िन्दगी की कमियों से दूर रहने की इच्छा थी । इसलिए गरीबी के कारण कई बार नंदिनी ने पिता की कलाकारिता पर सशक्त विद्रोह प्रकट किया था । इसलिए वह कभी कभी अपने को पिताजी का घातक समझती है ।

नंदिनी की राय में समाज के प्रतिष्ठित कलाकारों के नाम पर विराजने चित्रकारों के जैसे पिताजी कभी भी अपने मौके के पीछे दौड़ा नहीं । नंदिनी को उनकी बेटी होने के कारण बचपन के छोटी-छोटी चाहों को भी पाने की सुविधा नहीं मिली थी ।

अधिक संवेदना कलाकार को किसी न किसी प्रकार झेलना पड़ता है । वह प्रक्षुब्ध समाज के प्रति अपने विद्रोह को मन के परतों में दमन करते है । परिवेश के अनुसार उन संघर्षों को कलारूपों में परिवर्तित करते थे । वंसतदेव इन संघर्षों की प्रतिक्रिया के रूप में कभी-कभी हवा में हाथ-पैर फेंकते हुए चीख-चिल्लाहट करते हैं । होंठ भीचकर देर तक घर में इधर से उधर टहलता था। एक बार डॉक्टर ने उसे स्किसोफ्रीनिया का मरीज़ कहते है । उपन्यास के अंत में नंदिनी के आदतों में भी ऐसी पागलपन की रेखाएँ दर्शाते है । उसने जो अपने पिता के बारे में कहा है वह सब असत्य और उनके मन मस्तिष्क का विद्रोही भावना कहते है । ऐसे उपन्यास के आद्य से अंत तक स्वप्न और यथार्थ के बीच की एक आँख मिचौनी खेल हमें देखने को मिलते है ।

४.२ उपन्यासों में चित्रित कलाकार पात्रों का चित्रण

मनोवैज्ञानिक तौर पर कला कृतियों का स्रोत मन का अचेतन पटल है। इसलिए कलाकार पात्रों के अध्ययन में चेतन व्यक्तित्व की अपेक्षा अचेतन की ओर सविशेष ध्यान देना चाहिए । कलाकार का अचेतन मन कभी भी शान्त नहीं रहता । कला का सृजन अचेतन मन की सक्रियता और कार्यशीलता से होते है । एडमंड बर्गलर के अनुसार "कलाकार का व्यक्तित्व की प्रकृत या नार्मल हो ही नहीं सकता ।"[5]

पात्रों के विचार प्रक्रिया की जाँच पड़ताल करने से उसका मनोचित्रण पूर्ण हो जाते है । कलाकार क्या सोचते हैं ? कैसे सोचते हैं उनके क्रियाकलापों की मूल पेरणा क्या है ? ये सब जानकारी चरित्र चित्रण का उद्देश्य हैं ।

४.२.१ देवेन्द्रसत्यार्थी के उपन्यास कथा कहो ऊर्वशी में कलाकार पात्र

चतुर्मुख : धौली गाँव का पाथुरिया परिवार का मूर्तिकार है । परंपराओं से साधक

मूर्तिकार चतुर्मुख पुराने आस्थाओं को आकार देनेवाला कलाकार है ।

चतुर्मुख का जन्म मयूर भंज में हुआ था । उसके नौ बरस में उनके पिता मूर्तिकार उपेन की मृत्यु वहाँ के राजा के सेवकों से हुई थी । वह अपने हाथों से बनाए गए नटराज मूर्ति राजा को देने से इनकार किया । वह मूर्ति गट्ढा खोदकर छिपा भी किया गया । केलु काका ने उसे धौल गिरी लाया तब से वह थौली गाँव की मूर्तिशाला का मूर्तिकार हो गया ।

मूर्तिकला को ईश्वर के वरदान माननेवाला चतुर्मुख मूर्तिकला को पुराण से बाँधते हुए ऐसे मानते है । "सृष्टि के आरंभ में ब्रह्मा यह सोचकर चिन्ता में डूब जाते थे कि साधारण जीवजन्तु तो संख्या में बढ रहे हैं, पर मनुष्य बहुत कम है ..... ब्रह्मा को एक उपाय सूझ गया पत्थर के मनुष्य गढकर उनमें प्राण डालते रहने से ही काम नहीं चलेगा ..... कुछ मूर्तियों में प्राण डालकर ब्रह्मा ने उन्हें शिष्य बना दिया और उन मनुष्यों से पत्थर से मनुष्य को गढ़ने का आदेश दिया। फिर थड थड से मूर्तियाँ बनने लगी । बेह्मा का काम यही था कि उनमें प्राण डालते चले जाए ।"[6]

वह कला को अमर मानते हैं। पैसे को हाथ का मैल भी । इसको व्यक्त करने के लिए पुराण से कुछ शब्दों को भी वह जोड़ते है –जब से ब्रह्मदेव ने शिष्यों से मनुष्यों की मूर्ति बनाने का आदेश दिया तब से यह मूर्तिकला का आविर्भाव हुआ । ब्रह्मा के शिष्य आगे बढ़कर ब्रह्मा को तंग करने लगे – हमारे काम का मोल दो ! "ब्रह्मा बोले यह तो मोल तोल का खेल नहीं आनन्द के लिए किया जाने वाला पुण्य कर्म है । कर्म करते चलो, इसी में आनन्द है। पर ब्रह्मा के शिष्य बिगड गए उन्होंने मन लगाकर कर्म करना छोड दिया । बस यह समझ लो कि संसार में जितने भी लूले-लगडे और अन्धे-कुरूप मनुष्य हैं, सबके सब ब्रह्मा के उन असंतुष्ट

शिष्यों की रचना है ।"

इन दो कहानियों के द्वारा कला के प्रति चतुर्मुख का विचार समझ सकते है ।

वह अपने पोता नीलकण्ठ को बुलके साहब के निर्देश के अनुसार पाश्चात्य मूर्तिकला का ज्ञान प्राप्त करने के लिए लंदन भिजवाते हैं । वापस आनेवाला नीलकण्ठ के हाथों से त्रिमूर्ति का निर्माण पूरा करके देखने से इच्छुक चतुर्मुख निराशा के कारण विषपान करके जीवनत्याग करते है ।

नीलकण्ठ : चतुर्मुख का बेटा नारायण का पुत्र नीलकण्ठ अपनी परंपरा को आगे बढाने में आग्रह करने वाला युवा मूर्तिकार है । उसके पिता नारायण, बुलके साहब की सहायता से सरकारी कामकाज करते है । वह पिता से अलग कलकत्ता में रहते है । नीलकण्ठ लंदन से वापस आने के बाद भी पाश्चात्य परिवेश से प्रभावित होने के बदले परंपरा के अनुसार दादा चतुर्मुख के साथ मूर्तिशाला में मूर्तिकार बनकर रहते है ।

लंदन में हिटलर के द्वारा आयोजित युद्ध की खबर उसे अस्वस्थ बनाती है । वह उसके प्रेयसी अलवीरा से मिलने के लिए तडपते है। इसलिए उसे यहाँ त्रिमूर्ति के निर्माण की ओर ध्यान दे नहीं सकते है ।

मूर्तिनिर्माण में नीलकण्ठ की विमुखता से दुखी चतुर्मुख खुदखुशी करता है । यह नीलकण्ठ पर गहरा आत्मग्लानी का कारण बन जाती है । फिर से उसने बाकी सब कुछ भूलकर मूर्तिकला पर ध्यान केन्द्रित कर दिया गया । महादेव मूर्ति के निर्माण से त्रिमूर्ति रूप पूरा किया गया । इसके बाद कोणार्क के शिल्पि विशु की प्रेयसी ऊर्वशी नामक अपूर्ण शिल्प का पूर्तीकरण भी हुआ । तबसे लंदन के युद्ध समाप्त हुआ । अलवीरा नीलकण्ठ से मिलने

आयी।

बदलते परिवेश में कई प्रकार के भेदभाव आ गए । नीलकण्ठ की शादी अलवीरा से हुई । राजनीतिक तौर पर बदलते धौली गाँव में कला के शिक्षण के लिए सरकारी विद्यालय खोले गये । कला परंपराओं से बढकर दूसरों को भी प्राप्त करने के अवसर बन गए। बदलते परिवेश ने नीलकण्ठ को मूर्तिशाला से सरकारी स्कूल ऑफ आर्ट के प्रिन्सिपल के रूप में नियुक्त कर दिया । वह कला और परंपरा से अटूट संबंध रखने वाला आदर्श युवा कलाकार का प्रतीक है ।

४.२.२ मोहन राकेश के अन्धेरे बन्द कमरे में कलाकार पात्र

नीलिमा : उपन्यास का एक सशक्त नारी पात्र है । नीलिमा एक प्रयत्नशील नर्तकी है । उनकी महत्वाकांक्षाएँ उसे समाज के अनुसार मोड़ देने के लिए तैयार बनाती हैं ।

नीलिमा का वास्तविक नाम सावित्री था । आधुनिक नाम नीलिमा उसे उसके पति ने दिया । नामकरण में जो आधुनिकता लायी उसी तरह उसकी ज़िन्दगी में भी पति कई बदलाव लाया था । वह सब पूर्ण रूप से अपनाने के लि नीलिमा तैयार थी। लेकिन पूरी तरह आधुनिक नारी होने के बाद उसके पति में उत्पन्न परंपरा का बोध उसपर नीरसता पैदा करता है। वह विद्रोही बन जाती है । पति की इच्छाओं के विरुद्ध व्यवहार करती है । नृत्यांगना होने के साथ वह पेंटिंग में भी रुचि रखती है । वह एक सफल कलाकार के रूप में नाम और दौलत पाना चाहती है ।

भरतनाट्यम और कथक में अग्रणी होने की इच्छा उसे पति के साथ लंदन जाने से रोक देती है । पूर्ण रूप से आधुनिक नारी होने की इच्छा होने पर भी वह पति से अलग किसी

भी पुरुष के साथ शारीरिक संबंध जोड नहीं करती है। लंदन से परिचित ऊबानू नामक बर्मी कलाकार को कला के सफल विकास के लिए जीवनसाथी बनाना चाहती है । लेकिन दो दिन उसके साथ बीत जाने से भी पति से बिछुडकर जाने के लिए वह तैयार नहीं थी । यह नीलिमा के चरित्र की महानता को दिखाते है । दांपत्य जीवन के तनाव से दुखी सावित्री नृत्य करने से दूर नहीं जाती है । वह नृत्य करने से अपनी मानसिक व्यथाओं से छुटकारा पाती है । "मैं रात दिन जो नृत्य के अभ्यास से अपने को थकाती रही हूँ वह बहुत कुछ इसलिए भी था कि मैं अपनी थकान में अपने को भूली रहूँ ।"[7]

उपन्यासकार ने आत्मसम्मान से बलवत्ती नारी का चित्रण नीलिमा के द्वारा किया है । इसलिए अपनी महत्वाकांक्षाएँ तोडने पर भी बेटे के लिए वह पति के साथ जीने का निर्णय लेती है ।

४.२.३ गिरीश अस्थाने का उपन्यास धूप छाँही रंग में कलाकार पात्र

सुकांत : वह कलाकार और बुद्धिजीवी मध्यवर्ग की यातनाओं के प्रतिनिधित्व करते हैं । सुकान्त का व्यक्तित्व नार्मल, बहिर्मुखी व्यक्तित्व है । साधारणतयः यह कलाकार के व्यक्तित्व से भिन्न है । इसका कारण यह है कि उपन्यासकार सुकांत की रचना - कला कला के लिए नहीं जीवन के लिए क्या है यह दिखाने के लिए प्रस्तुत किया गया है ।

सुकांत एक साधारण व्यक्तित्व है । वह जीवन में झुकनेवाली समझौता करनेवाली साधारण ज़िन्दगी व्यतीत करने की आकांक्षा करनेवाला व्यक्ति है । उसकी दायरा सीमित है । राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक समस्याआं से वह विशेष रूप से सजग नहीं ।

उपन्यास के आरंभ में सुकाांत की सैनिक ज़िन्दगी का चित्रण है । वह घर की कठिनाइयों से मुक्त होने के लिए सैन्य में भर्ति लेते है ।

सुकांत का व्यक्तित्व एक विद्रोही व्यक्तित्व नहीं। वह समझौते के लिए सदा तैयार है । इसलिए वह युद्ध के अवसर पर अनुशासन को तोडकर ज़रा इधर-उधर भटकने के लिए तैयार नहीं है । सुकांत के व्यक्तित्व में एक अच्छा आदमी का आरोप है । लेकिन अंदर ही अंदर छिपनेवाला कलाकार की रुचि उसे कभी कभी कमज़ोर बनाती है ।

उपन्यासकार सुकांत में कलाकार की अधिक संवेदन क्षमता का व्यक्तित्व चढ़ाया नहीं। वह अपनी बहन के प्रति और षहनाज़ के प्रति भी संवेदनशील नहीं है। षहनाज़ से किशोरी मन के जबर्दस्त आकर्षण होने पर भी पत्नी पाने पर शहनाज़ की छाया को भी भूल जाते है ।

दूसरे भाग में सुकान्त नविनप्रम का छोटा अफसर है। यह उद्योग वह सैनिक ज़िन्दगी से मुक्ति पाने के बाद आत्मसात करते है । वह आर्थिक दृष्टि से सुस्थिर और सम्मानित जीवन बिताना चाहते है । इसलिए वह चित्रकला की शौक के लिए पर्याप्त अवसर और अवकाश ढूँढते है । सुकांत का चित्रकार भी आत्माभिव्यक्ति के लिए व्याकुल नहीं । उसे चित्रकार के रूप में यश चाहिए । इसके लिए वह कुछ भी करने के लिए तैयार है । सुकांत जैसे शिक्षित बुद्धिजीवी व्यक्ति के लिए अपनी भावना, बुद्धि, संस्कार और व्यक्तित्व तक को बेचकर एक उच्चवर्गीय ज़िन्दगी जीने की उत्सुकता है । इसके लिए वे आत्मा तक को गिरवी रख्रते हैं। वह नविनिप्रम की नौकरी स्वीकारते समय और वह काम छोडते समय भी अधिक संवेदनशील नहीं होते है । सैनिक होते हुए भी उसके अंदर एक सजग चित्रकार थे – "सुकान्त खिड़की से बाहर देख्रने लगा । पूर्वी अंचल पर बन रही विशाल म्यूरल पेन्टिंग में कुदरत का

अभी जस्ते, सुरमे और सफेद के मिले जुले रंग ही भर रहा था। गुलबी, लाल और सुनहले रंगों में अभी अपने मूँची नहीं बोरी थी ।"[8]

यह सुकांत की व्यक्तित्व के 'नोर्मलसी' भी उनके परिवेश के प्रभाव है । उसे अपनी कला प्रस्तुति के लिए धन चाहिए इसके लिए सैनिक बनना पडता है और फिर नवनिप्रम का अफसर। लक्ष्य की प्राप्ति के लिए समझौता से और कोई रास्ता नहीं वह भी एक कलाकार का प्रतिशोध है ।

४.२.४ बदी उज्ज़मा के एक चूहे की मौत में कलाकार पात्र

ग : 'ग' एक चित्रकार है । उसका व्यक्तित्व विद्रोही व्यक्तित्व है । 'ग' उपन्यास के मुख्य पात्र 'वह' के समान सरकारी कार्यालय के तीसरे दर्जे के क्लार्क है । वह अपनी माँ केलिए ऑफीस में जाते है । सरकारी कार्यालय में फाइलों के कामकाज के लिए हर पदवी के अनुसार नियम कायम रखना चाहिए । 'ग' उन नियमों से बन्धनस्थ होने के लिए तैयार नहीं वह ऊँचे पदवी पर बैठने अफसरों से डरते नहीं । यह ऑफीस की कानूनी व्यवस्थाओं में कई जकडन लाते है । लेकिन इससे 'ग' पर कोई प्रभाव ला नहीं सकता । उन्नत अधिकारियाँ गति-विधियों के विपरीत इस तीसरे दर्जे के क्लार्क से डरने लगा । माँ के मृत्यु के बाद वह सर्वतंत्र स्वतंत्र हो जाते है। वह परिवर्तित समाज व्यथा को नकार कर स्वतंत्र रूप से चित्रकार बन गए ।

पूरे सरकारी ऑफीस व्यवस्था 'ग' को एक बडे चूहेखाने के रूप में महसूस करती है । वह फाइलों को चूहों की तरह मानते है । सब कर्मचारियाँ चूहेमार है । इस दृष्टि से वह एक चित्र खींचा है । उस चित्र का नाम 'चूहेमार' है । यह सामाजिक अनैतिक समाज पर ऊँगली उड़ानेवाला चित्र है । 'ग' बार बार जनता से कहते है – "तुम सब चूहे मारते खुद

भी चूहे बन गए हो ।"[9]

यह चित्र सामाजिक जटिलता से 'ग' द्वारा प्रस्तुत सवाल है । समाज में हर एक व्यक्ति डोरों के पुतलों के जैसे और किसी ओर के इशारे से जीने से वहाँ मनुष्यत्व की भिन्न क्षमता की समाप्ति हो जाती है । सब चूहों के जैसे समान निष्क्रिय चोर बन जाते हैं। लेकिन यांत्रिक समाज किसी को भी अपने भयावह पंचों से निकलने नहीं देते है । उस भयावह यान्त्रिकता के जकडन में सारी मानवता तड़पती है । 'ग' के लिए कला रोटी कमाने की रास्ता नहीं थी। इसलिए भूख और गरीबी ने उसे ज़िन्दगी से बाहर निकालने के लिए ज़ोर कर दी । उसने अपनी सृष्टि बेचकर ज़िन्दगी आगे बढ़ाने की कोशिश की । अंत में इस समाज की कुटिल व्यवस्थिति पर अपनी सृष्टियों से गहरी प्रहार देकर खुदखुशी की ।

प : वह अर्थ व्यवस्था पर आधारित मशीनवत मानव का प्रतीक है। वह धन और नाम के लिए किसी भी कुटिल रास्तों को अपनाने के लिए समर्थ है । वह भी 'ग' के समान चूहेखाने का चूहेमार है । उसे वहाँ अन्य अफीसरों के बीच बडे चित्रकार के नाम और प्रशस्ति है । वे चित्रप्रदर्शनियाँ आयोजित करते हैं । चित्रों को बडे इनाम पर बेचकर आर्थिक राशी बढ़ाते है । वह अपनी मेहनतों से ज़्यादा दूसरों की मेहनत से लाभ उठाते है । नियति के कराल हस्थों से छिन्न-भिन्न हुए यथार्थ कलाकारों की सृष्टियों को छल कपट के माध्यम से अपनाकर उसपर 'प' का नाम लगाकर प्रदर्शनी से नाम और धन कमाते हैं । 'प' जटिल समाज का कुटिल व्यक्तित्व का अंगन है ।

४.२.५ सुरेन्द्र वर्मा का उपन्यास मुझे चाँद चाहिए में कलाकार पात्र

वर्षा : पुरुष प्रधान समाज में वर्षा जैसे नारी व्यक्तित्व को प्रत्येक स्थान मिलती है तो

वह उसके व्यक्तित्व की सविशेषता है । 'वर्षा वशिष्ट', वह उसका नाम नहीं है। शाजहाँ-पुर के संस्कृत मुंशी किशनदास शर्मा की पुत्री का नाम यशोदा शर्मा (सिलबिल) था । हाइस्कूल क्लास में संस्कृत साहित्य से मिले वर्षा वशिष्ट नाम उसने विरासत को नकारते हुए अपना बना दिया । यह उसके परंपरा के प्रति निर्भीक विद्रोही व्यक्तित्व का अंकन है । बचपन से ही अन्य बच्चों से भिन्न अपने स्वतंत्र रास्ता अपनानेवाली लडकी ने मध्यवर्गीय परिवार में थोडा हलचल मचा लिया ।

क्लास में सभी छात्रों को – मैं आगे चलकर क्या बनना चाहता हूँ / चाहती हूँ – विषय पर लेख लिखने को कहा था । वर्षा ने लिखा, "मेरा बस चले तो मैं आकाश की दहलीज पर बने सात रंगों की अल्पना बनूँ, आश्रम में शकुन्तला की प्रिय वनज्योत्सना सखी बनूँ, चन्द्रमा को देखकर खिल जानेवाली कुमुदिनी बनूँ, पर जो अपने प्रदेश के अनुरूप दबी-सकुची मध्यम वर्गीय कन्या है, उसकी महत्वाकांक्षा की अंतिम सीमा यही हो सकती है कि लोअर-डिविज़न क्लर्क उसके हाथों से वरमाला स्वीकारा कर ले और मामूली दहेज के बावजूद ससुराल के रसोई घर में उसके साथ कोई दुर्घटना न हो ...."[10]

वर्षा की सहज धीरता ने टीचरजी को प्रभावित किया । उन्होंने वर्षा के घर की हालत और वर्षा की क्षमता समझकर उसे ट्यूशन लेने की मौका दी । ऐसे उनके चारों तरफ के रुपए कमानेवाली पहली कन्या बनने की स्थिति हुई ।

मिश्रीलाल डिग्री कॉलेज में संस्थापक दिवस के अवसर पर आयोजित नाटक 'अभिशप्त सौम्यमुद्रा' का अभिनय उनके आगे के जीवन की आधार शिला बन गयी । अध्यापिका दिव्याकत्याल की सहायता को भंग हो जाने का अवसर उस पर गहरी चोट लगाते

है । लेकिन वह स्थिति उसको स्वतंत्र रूप से आगे बढ़ने की शक्ति भी प्रदान करती है ।

नाशनल स्कूल ऑफ ड्रामा का साक्षात्कार में प्रशोभित वर्षा वशिष्ट 'बेवफ दिलरुबा' से 'अपने-अपने तर्क' नामक नाटक तक की यात्रा से नाटक के मुख्य पात्र की श्रेणी में आ गए । मन इतने तटस्थ होते हुए भी नारी की सहज प्रेमभावना से वर्षा मुक्त नहीं थी । उसके सहकर्मी हर्षवर्धन से उसे थोडा और लगाव था। उसके मम्मी-पापा वर्षा को अपनी पुत्र वधु बनाने चाहते हैं । लेकिन अपनी मनोकामनाओं की पूर्ती करने के पहले वह परिवार की जाल में पड़ने के लिए तैयार नहीं थी । यह वर्षा के महत्वाकांक्षी व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते है ।

फिल्मी जगत में अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन कर यशस के उत्तुंग शिखर पर विराजते हुए भी फिल्म का प्रमोषन के लिए फिल्मी कार्यकर्ताओं के द्वारा किए गए छल कपट के रास्तों पर साथ देने के लिए वर्षा तैयार नहीं थी । इसलिए उसने फिल्मी जगत के बडे नाम और दौलत को इनकार कर रंगमंच पर वापस कर दिया । कला के प्रति आदर की भावना इस प्रवृत्ति के द्वारा की गई है ।

हर्ष की मृत्यु के बाद वर्षा ने पेट के बच्चे को उसकी इच्छा के अनुसार खुले आसमान के नीचे जीने की मौका देने के विश्वास में किसी और के सहारे के बिना ज़िन्दगी को आगे बढ़ाते हैं । यह वर्षा के अंदर के अविराम महत्वाकांक्षाओं की स्फूर्ति दिखाते है ।

४.२.६ देवेन्द्र सत्यार्थी के दूध गाछ में कलाकार पात्र

रुद्रपदमः रुद्रपदम फिल्मी संगीत के प्रभाव से फीके हुए शास्त्रीय संगीत को आगे बढाने के लिए प्रयत्नशील है । वह संगीत कला को देश काल परिधि को लाँघनेवाली शक्ति मानते है । वह रचनाकार की जिह्वा है । रुद्रपदम के महान व्यक्तित्व के बारे में उपन्यस में

ऐसे कहते हैं – "कला में कोई ऐसा प्रसंग नहीं, जिसमें रुद्रपदम रस न ले सकते हो अथवा जिस पर वे एक मेधावी के समान कुछ बोल न सकते हो । निर्भयता उनकी अभिरुचि है, परंपररा और अनुभूति का सन्तुलन उनकी आस्था, और कला में चिरन्तर सत्य का मूल्यांकन उनका महा व्रत ।"[11] रुद्रपदम को एक ही बात पर दुख्र है कि उसका सुपुत्र गोविन्दन पिताजी के रास्ते से हटकर बंबई के फिल्मी चमत्कार पर डूब गए है ।

रुद्रपदम शास्त्रीय संगीत को हाथी और फिल्मी संगीत को गधा मानते हैं । रुद्रपदम के लिए सुख्र का तत्व जीवन की अंतिम उपलब्धि नहीं कला का यथार्थ यातना है । वह यातना को वह कला की कसौटी मानते है। वह कहते है यातना स्वयं रागिनी बन जाती है।

रुद्रपदम संगीत को जाति वर्ण व्यवस्थाओं की सीमाओं को तोडनेवाली शक्ति मानता है । उन्होंने शास्त्रीय संगीत पाठाशला का आयोजन मछली ठोली में किया है।

रुद्रपदम की साठवीं वर्षागाँठ वर्कला के लिए महोत्सव का दिन था । संगीतज्ञ फयास ख़ॉ की संगीत परंपरा के बाद संगीत सभा से ही रुद्रपदम का जीवन इहलोक से परलोक को सुधार गए । इस तरह की मृत्यु एक कलाकार के लिए ईश्वर का महत्वपूर्ण वरदान है ।

मृत्यु तक संगीत के परिप्रेक्ष्य में वह एक बच्चा ही मानते थे । वह राग रागिनियों का माँ के दूध जैसे पान करने के लिए चाहते थे । मृत्यु के बाद उसके चिताभस्म को मछली टोली के समीप समुद्र में लीन कराने के लिए उसने शांङधरन को आदेश दिया था । ऐसे करें तो उसका पुनर्जन्म मछली टोली के किसी एक के पुत्र के रूप में होगा । तब वह अपना शिष्य शांङधरन को गुरु बनाकर संगीत शिक्षा जारी कर सकते है। ऐसी शास्त्रीय संगीत परंपरा को आगे बढ सकते है ।

रुद्रपदम कला की परंपरा के विकास को चाहते है । उनकी राय में हर कलाकार माँ के समान अपनी परंपरा के क्रमिक विकास के लिए प्रयत्नशील होगा ।

शंङधरन: शंङधरन रुद्रपदम का मानस पुत्र है । वह एक मूर्तिकार का पुत्र होते हुए भी शास्त्रीय संगीत में सविशेष रुचि रखते थे । वह गुरु रुद्रपदम के शब्दों को ईश्वर का शब्द मानते है । ऐसे रुद्रपदम की परछाई बनने का भाग्य शंङधरन को मिलते है । उसको गोविन्दन के चमत्कार पूर्ण फिल्मी संगीत से कोई लगाव नहीं । उसे शास्त्रीय संगीत की अपारता में विश्वास है ।

गुरु का विश्वास जीतना एक शिष्य के लिए महत्वपूर्ण वरदान है । शंङधरन ऐसे सौभाग्य को पाने वाला शिष्य है । रुद्रपदम की आत्मकथा में वह शंङधरन से ऐसे कहते है - "पिय शंख, मेरे प्रिय शिष्य तुम्हें कला का उत्तराधिकार संभालकर रखना होगा । मैं आ रहा हूँ पुनः जन्म लेकर फिर से शिशु बनकर शिष्य का शिष्य बनकर ही मेरा जीवन सार्थक होगा ।"[12]

गुरु की मृत्यु के बाद शांखधरन ने गुरु के आत्मकथा का प्रकाशन करके उससे मिले रुपऐ से बंबई जाकर गुरु के जीवन को आधार बनकर एक फिल्म का निर्माण किया । यह गुरु महिमा को असीमित क्षेत्रों तक फैला दिया । इसके बाद वर्कला में वापस आकर गुरु के वचनों को आत्मसात कर मछुआ टोली से पंचानन नामक मछुआरे बालक को अपना शिष्य बनाकर शास्त्रीय संगीत के क्रमिक विकास की नयी कडी को रुपायित करते है।

४.२.७ मधुप शर्मा के आखिरी अढ़ाई दिन में कलाकार पात्र

मीनाकुमारी: भारतीय सिनेमा जगत में बीगं माहजबीन बानु नामक मीनाकुमारी लेजन्डरी ट्राजडी क्यून के रूप में आज भी ज़िन्दा है ।

गरीबी की विकरालता में पनपते मीनाकुमारी के बचपन में अनचाही बेटी की

कष्टताओं को कई तरह झेलना पडते हैं । अभिनत्री बनने की इच्छा कभी भी उसके अन्दर नहीं थी । परिवार वालों को गरीबी से मुक्त करने के लिए बाल अभिनेत्री के पोशाक पहननेवाली छोटी मीनाकुमारी के छः साल के पहले की फिल्मी यादों से वह अब भी मुक्त नहीं । मीनाकुमारी कहते है पहले अभिनय की आमदनी लेकर आते वक्त ज़िन्दगी में पहली बार पिता ने उसे प्यार की नज़रों से देखा और पीठ पर थपथपाए ।

फिल्मी जगत में उसका आगमन बाल्यावस्था में था। लेकिन फिर से एक बार भी उससे अलग होने का अवसर उसे नहीं मिला । घर परिवार को गरीबी से उसने मुक्त कर दिया । जो कुछ वह फिल्म से अपनाया वे सब दूसरों के लिए था । ज़िन्दगी में वह जो कुछ चाहती थी वह सच्चा प्यार था । वह उसको ज़िन्दगी में कभी भी हासिल कर नहीं सकती।

जवानी के दहलीज पर उसने बाल अभिनेत्री से हीरोइन बनने शुरू किया था । गरीबी से मुक्त परिवार को तब धन की लालसा थी । उनके सब कुछ पिताजी के नियन्त्रण में थे । बडे बडे धनराशी और नामी डायरेक्टर आदि को लक्ष्य बनाकर चलने वाले पिताजी की इच्छा के अनुसार उसे पात्र और फिल्म को चुनना पड़ता था । यह उसको निराश बना दिया। वह गरीबी से मुक्त करने के लिए हाथ थामने वाले सहकर्मियों से भूल करने के लिए तैयार नहीं थे ।

मीनाकुमारी ने कलाकार का दोहरी व्यक्तित्व के मानसिक संघर्षों को पूर्ण रूप से अनुभव किया है । वह कहती है – "मैंने हमेश ही दोहरी ज़िन्दगी जी है एक वो बाहर जिसकी वजह से मैंने वो सभी कुछ पाया, जिसकी कोई भी कामयाब इनसान कभी चाहत कर सकता है । दिन रात अपने प्रशंसकों और चाहने वालों से घिरी रही । और दूसरी ज़िन्दगी .... मेरी अपनी अंदरूनी ज़िन्दगी ....जिसमें मैं बिलकुल तन्हा, अटूट प्यास और दर्द में लिपटी हुई मेरी

छटपटाती रूह, चारों तरफ तपता हुआ रेगिस्तान, दूर-दूर तक न कोई हमदर्द न पासबान मेरी कराहों और चीखों की आवाज़ खलाओं से टकराकर आखिर मेरे ही पास लौट आती है । मेरी वाहिद साथिन है, मेरी तन्हाई ।"[13]

कमाल अमरोही के छल कपट में मीनाकुमारी फँस जाने का कारण उसका कोमल व्यक्तित्व ही है। वह कष्टता में सहायता देने वालों को सहारा देना चाहती है । और सच्चे प्यार की प्यासी मीनाकुमारी को अमरोही के प्यार के छल कपटों को समझने की क्षमता नहीं हुई । वह शादी के बाद कितने स्वप्नों को बुनती थी वे सब निराशा में बदल गए । एक नारी होने के कारण एक माँ बनने की इच्छा उसके मन में उभर आती थी। ज़िन्दगी में कभी भी हासिल करने वाले सच्चे प्यार को बच्चे से प्राप्त करने के लिए वह चाहती थी । लेकिन अभिनेत्री की शारीरिक सुन्दरता और इंडस्ट्री में हीरोइन का स्थान ये सब खो देने के लिए अमरोही तैयार नहीं थे ।

वह उनके अंतिम दिनों में शराबी होने के कारण सुराही बन गए पेट पर हाथ फेरते हुए ऐसे कई बार सोचती थी । यह भारी पेट एक बच्चे को पैदा कर सकती तो कितने खुश नसीब होगा । यह अभिनेत्री के अन्दर की सच्ची नारी का दुःख है । सुख-दुःख सम्मिश्र ज़िन्दगी की गहरी चोटों को जीवन भर संभालकर मनहूसियाँ पैदा करनेवाला व्यक्तित्व मीनाकुमारी को पूर्ण रूप से ट्राजडी क्यून बनाते है ।

४.२.८ अमृतलाल नागर के उपन्यास में कलाकार पात्र

अरविंद शंकर: मशहूर उपन्यासकार अरविंद शंकर अपने पूर्वजों की आर्थिक और सामाजिक उन्नति पर अभिमानी है । वह अपनी ज़िन्दगी को ईमानदारी और कर्मनिष्ठता से सफल बनाना चाहते है ।

आज़ादी के बाद भारत में आए जडकनों पर वह बडी दुखी है। वह अंगरेज़ों के शासन काल में जनता के कष्टमय जीवन आज़ादी के बाद मिट जाने के सुन्दर स्वप्न से वंचित जनता का प्रतिनिधि है । आज़ादी के बाद नष्ट हुए त्याग का महत्व और पैसे वाले तथा कथित बडे आदमियों की स्वार्थता, ईमानदार लोग, मूर्ख बनाने वाली राजनीतिक व्यवस्था पर वह कट्टर विरोध करते है। इसलिए ऐसे राजनीतिक दलों द्वारा आयोजित षष्टिपूर्ति का सार्वजनिक समारोह पर वह अस्वस्थ है । लेकिन उसे इस ऊब भरी वातावरण से मुक्ति नहीं है । उसका पुत्र उमेश के आईए.एस पदवी के लिए उसे इन स्वार्थी राजनीतिज्ञों को मनाना पड़ता है । यह उनकी पत्नी माया का अश्रुसिक्त आग्रह की पूर्ति है । इसलिए वह इस सम्मान मंडित असम्मान को स्वीकार करते है।

उस ईमानदारी व्यक्तित्व को अपनी छोटी बच्ची वरुणा के लिए उनके होने वाले पति से भी धोका करना पड़ता है । वह अंतिम चार वर्षों से क्षय के मरीज़ है । उनका मंझला बेटा भवानी का अन्तर्जातीय ब्याह और पत्नी और बच्चों को मायके में छोडकर अलग रहनेवाला बेटा ये सब उनका सारा अस्तित्व झूठ और निरर्थक बना देता है ।

समारोह के बाद घर वापस आते समय मिले लिफाफों से एक प्रकाशक का तार उसे मिला, जिन्होंने उसे दो हज़ार रुपए देकर उपन्यास का इन्तज़ार करते हुए डेढ साल हो गए जिनके धमकी की नोटीस पहले ही उसे दिन में मिली थी । इस तार में प्रकाशक उपन्यासकार से उस नोटीस के लिए माफी माँगते है । यह उसके मन को हल्का बना देता है ।

समारोह में राजनीतिज्ञों को किया गया प्रहार उमेश को घर छोडने का कारण बन गया । लेकिन इस पर लेखक का मन हिला नहीं । वह इस प्रवृत्ति के बदले ऐसी प्रतिक्रिया प्रकट करते है – "दुनिया की परवाह करने वालों को दुनिया के सभी नाटक करने पड़ते हैं । मैं अपने

बच्चों को वह सब कुछ न दे सका, जो आज के नौजवान चाहते है ।"[14]

उसकी आँखों के सामने अब 'हेमिंग्वे' का 'बूढ़ा मछेरा और समुद्र' का नायक है । वह उस नायक के समान पराजय को इनकार करते है । बाहरी परिस्थितियों से हर तरह टूटा और हारा लेखक आंतरिक तौर पर हार करने के लिए तैयार नहीं है । वह उपन्यास की रचना शुरू करते है। उसमें नौजवानों की आशाओं-आकाँक्षाओं और कुण्ठाओं के अपने अनुभव के प्रकाश से प्रस्तुत करते है ।

इस उपन्यास में रमेश नामक युवा पात्र के माध्यम से समाज की कुनीतियों पर वह कट्टर प्रतिशोध करते है ।

४.२.९ प्रकाश मनु के पापा के जाने के बाद में कलाकार पात्र

वसंतदेव: सुजानपुर से कला की महत्वाकांक्षाओं को सार्थक बनाने के लिए दिल्ली में आए हुए भावुक लेकिन उद्धत युवक को कला की यथार्थवादी समझ और पहचान नहीं थी । लेकिन दिल्ली के भीषण किस्म के शोषणों से जो पाठ उन्होंने सीखा वे सब उसके अन्दर के कलाकार को निखरा दिया ।

कला के बडे वातायनों को खोजकर आए हुए उत्साही युवक को आर्थिक मज़बूरियों से मामूली 'कवर डिसाइनिंग' का काम करना पड़ता था । कवर डिसाइनिंग और प्रूफ रीडिंग से धन कमाते हुए उनके अन्दर के चित्रकार को उत्पीडन और मानसिक यातनाओं से संघर्ष करना पड़ता होगा। एक भावुक और सवप्नदर्शी किशोर धीरे-धीरे आसपास की ठोकरे खाने के बाद एक चिडचिड और गुस्सैल अधेड में बदलने का चित्र हम वसंतदेव में देख सकते हैं ।

पैंतीस सालों के बीच पन्द्रह-बीस मकान बदलकर होने वाली यात्रा उसने रोनहपुर में रोक दिया । बाकी ज़िन्दगी वहाँ के ढाई कमरों वाले मकान में थी । गार्गी वसंतदेव की पत्नी वह उसके लिए अनमोल रत्न है । वसंतदेव के अन्दर जो कलाकार की झलक है उस पर आकृष्ट होकर धन दौलत से संपन्न परिवार को छोडकर उसके साथ आयी थी ।

वसंतदेव की ज़िन्दगी भर की कठिनाइयों ने उसे अतिसंवेदनात्मक बनायी । यह उसपर एक प्रकार की एबनोर्मीलिटी पैदा कर दिया । इसके बारे में नन्दिनी, वसंतदेव की पुत्री ऐसे कहती है – "बिलकुल साधारण आदमियों की तरह एक आदमी - जिसका बस चले तो गुस्से में दीवार से अपना सिर दे मारे या अपने बाल नोंच ले ।"[15]

कठिन गरीबी से चलते हुए भी अपनी कला को पैसों से मोल तोल करने को वह इनकार करती है। उनके शुभचिंदक उसको आर्थिक कठिनाइयों से मुक्त करने के लिए कई प्रयत्न करते है । ऐसे मध्यप्रदेश के एक सज्जन व्यापारी आया था उन्होंने इंदोर में होटल बनाया । वे वसंतदेव को छह महीने से वहाँ की कला सज्जा करने के लिए ले जाने चाहते थे । पचास हज़ार ऑफर भी किया । दस हज़ार घर से पेशगी भी की । वसंतदेव ने बच्ची के लिए यह काम करने की तैयारियाँ भी किए । लेकिन सहज कलाकार के लिए दूसरों की इच्छा के अनुसार कला को गुलामी बनाना मुश्किल है । यह उसके मानसिक पटल को गहराई से चोट कर दिया । उस सहृदय वसंतदेव की निस्सहाय स्थिति समझकर उसके 'रोहनपुर गाँव का मेला' नामक चित्र लेकर गए ।

वसंतदेव की पुत्री के अनुसार उसके लिए कला सृजन एक पागलपन है । नन्दिनी कहती है – "उन पर तो कला का दौरा पडता था । ..... और ये दौर कई कई दिनों तक चलते है । और उतरते ही फिर किसी न किसी तरह से, किसी न किसी रास्ते फिर वे उनके

सिर पर चढ़ बैठते है । ..... उत्तेजना और निराशा के दौर भी शामिल थे।"[16]

आत्मसंघर्ष के चंकुल में भटकते कलाकार का यथार्थ चित्र वसंतदेव के द्वारा उपन्यासकार ने खींचा है ।

४.३ कलाकार और आत्मसंघर्ष

डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा ने 'त्रासदी' नामक किताब में कलाकार के बारे में ऐसे लिखा है कि वे अत्यंत सहज और संवेदनशील प्राणी है । इस संवेदनशीलता साधारण व्यक्ति से ज़्यादा होती है । इसका कारण यह है कि वे इनके मन के तीन परतों चेतना, अन्तःचेतना और अचेतना का अवगम और अवगाहन करने में समर्थ होते हैं । विद्रोह की भावना मन में भरपूर होने से भी कलाकार किसी एक कला के रूप में ही उसको बहा देता है ।

कला पर समाज और परिवेश का प्रभाव ज़रूर पड़ते हैं । इसलिए बाह्य संघर्ष कलाकार की आत्मा को आन्दोलित करते हैं । वह आन्दोलन कला की शक्ति का रूप है । यह आत्मसंघर्ष सृजन की ऊर्जा का स्रोत है । इसलिए कलाकार के लिए आत्मसंघर्ष से मुक्ति नहीं है । कलाकार दमित वासनाओं की प्रत्यक्षाभिव्यक्ति नहीं करते है। इस पर अचेतन की सीमाएँ बैठा रहती है, बल्कि प्रतीकों के द्वारा प्रकट करते हैं । इसको उदात्तीकरण कहते है । इसलिए कला किसी उच्चतर लक्ष्य से संबंध रखती है । ऐसी कला को सामाजिक रूप में स्वीकृति मिलती है । ऊपर दिए गए कलाकार पात्रों के अध्ययन से उपन्यासों में कलाकार की प्रस्तुति विभिन्न तरीके में हुई है ।

४.३.१ मूर्तिकार और आत्मसंघर्ष – कथा कहो ऊर्वशी में

यह मूर्तिकला के दौर पर बदलते हुए परिवेश का चित्रण है । परंपरा पर

आधारित मूर्तिकला से लेकर आर्ट स्कूल तक जाने वाली मूर्तिकला की विकास यात्रा इसमें देख्रने को मिलती है । इस उपन्यास में मूर्तिकला की परंपरागत विकास गति में उत्पन्न बाधाएँ कलाकार को दुःख्री बनाती है । परंपरा पर विश्वास रख्रने वाला मूर्तिकार आर्थिक कठिनाइयों से पीडित नहीं । सामाजिक परिस्थिति भी धौली जैसे मूर्तियों के गाँव में मूर्तिकारों के लिए अनुरूप है ।

उपन्यास के आरंभ में कला और धन के बीच के संबंध कहते है । चतुर्मुख्र वह परंपरावादी मूर्तिकार है । वह बेचते हुए मूर्तियों की याद से दुख्री है । अब वे मूर्तियाँ बेचने के लिए इनकार करते हैं । लेकिन नयी-नयी मूर्तियों के निर्माण में कोई रुकावट नहीं । वे अपने थोडी ज़मीन और दाल भात से संतृप्त हैं ।

वह कला के द्वारा संस्कृति का विकास चाहते हैं । वे राजा अशोक द्वारा बनाया गया अश्वत्थामा शिलालेख्रों से अपनी परंपरा के महत्व पर गर्व करते हैं। उसी तरह अपनी परंपरा द्वारा बनायी गयी त्रिमूर्तियों को भी भारतीय संस्कृति के अंग बनाना चाहते हैं । परंपरा पर भक्त होते हुए भी पाश्चात्य मूर्तिकला को मानने के लिए वह तैयार है । इसलिए वह पोता नीलकण्ठ को विलायत भेजते है ।

बुल्के साहब के द्वारा अपना पुत्र नारायण सरकारी कर्मचारी बनकर मूर्तिकला से दूर हो जाने से वह बहुत दुख्री है । नीलकण्ठ विलायत से वापस धौली गाँव में आने से वह ख्रुश भी है । नीलकण्ठ अलवीरा की यादों में त्रिमूर्ति निर्माण से विमुक्त रहने के कारण चतुर्मुख्र के मन में कई संघर्ष उत्पन्न हुए । उस दुःख्र से विमुक्ति पाने के लिए चतुर्मुख्र जहर की सहायता लेते है।

नीलकण्ठ का वैयक्तिक संघर्ष उसे कला से विमुख्र बनाते है । चतुर्मुख्र की मृत्यु

के बाद उससे किया वादा की अपूर्णता से दुखी नीलकण्ठ उनके अन्तसंघर्षों को मूर्तियों के निर्माण में भेंट देते है । "ब्रह्मा के रूप में चतुर्मुख के पिता मूर्तिकार उपेन खडे थे, हाथ में नटराज की मूर्ति लिए हुए । विष्णु के रूप में दरशाथे गए थे महात्मागाँधी, हाथ फैलाए, चन्दा माँगने की मुद्रा में । महादेव के रूप में विराजमान थे चतुर्मुख, शंख में विषपान करते हुए ।"[17] इसमें महादेव का मूर्ति शंख के आत्मसंघर्षों की सृष्टि है । इसलिए उसमें चतुर्मुख के विषपान का आभास व्यक्त है ।

४.३.२ नृत्यांगना और आत्मसंघर्ष – अंधेरे बन्द कमरे में

उपन्यासकार मोहन राकेश के शब्दों से इस उपन्यास के बाह्य संघर्ष की पहचान हमें मिलती है । स्वातंत्र्योत्तर परिवेश में देश में बडी सांस्कृतिक गतिविधियों और राजनीतिक कूटनीतियों के बीच अंधेरे बन्द कमरे में पड गए परिवारों के प्रतीक के रूप में हरबंस और नीलिमा का चित्रण किया गया है । इसमें नीलिमा कलाकार पात्र है । विभिन्न बाह्य संघर्षों के प्रभाव नीलिमा पर कई वैयक्तिक संघर्ष उत्पन्न करते हैं ।

आधुनकिता का अन्धानुकरण के द्वारा हरबंस ने सावित्री नाम की परंपरा पर आधारित नारी को आधुनिकता के पोशाकों से अलंकृत कर नीलिमा नाम भी रखा । यह नीलिमा में गहरा प्रभाव लाया । उसके अन्दर एक महत्वाकांक्षी नारी थी वह अनुकूल वातावरण पर पनपकर बडी हो गई । तब हरबंस के अन्दर रूढिवादिता का अंकुर हुआ। गृहणी बनने से ज्यादा नृत्यांगना बनने की इच्छा नीलिमा को पति के विरुद्ध चिंताओं के बीच पड गई । वह पूरी तरह आधुनिकता को छोडने की और परंपरा पर वापस विश्वास रखने के लिए सक्षम नहीं थी ।

आधुनिकता से मोहग्रस्थ हरबंस नीलिमा में शराब और सिगरेट पीने की आदत

भी बढ़ाने के बाद कला से उनका संबंध को भी छोड़ देने के लिए कहने से नीलिमा को संघर्षों को सामना करना पड़ा । प्रारंभ में नीलिमा पति से शालीन निवेदन करती थी फिर वह खुले टक्कर में बदल गई ।

पारिवारिक संघर्षों से उत्पन्न आत्मसंघर्ष ने उसे नृत्यकला में प्रतिष्ठा पाने के लिए सशक्त बनाया । वह रात-दिन नृत्य अभ्यास में मग्न रही । इसके बारे में नीलिमा ऐसे कहती है – "मैं रात-दिन जो नृत्य के अभ्यास से अपने को थकाती रही हूँ वह बहुत-कुछ इसलिए भी था कि मैं अपनी थकान में अपने को भूली रहूँ ।"[18]

दिल्ली कला निकेतन की स्पोन्सरशिप में हरबंस का सतत विरोध करने के बावजूद भी, हरबंस के आत्मबल पर ठेस पहुँचाने पर भी उसने अपने नृत्य के शो को पूर्ण कर दिया । यह उनके अन्तःसंघर्ष की प्रतिक्रिया है ।

४.३.३ चित्रकार और आत्मसंघर्ष – धूप छाँही रंग में

इस उपन्यास में अभिव्यक्त आर्थिक संघर्ष कलाकार का आत्मसंघर्ष का कारण है । आर्थिक समस्या व्यक्ति को कलाकार से सैनिक के ज़िन्दगी जीने के लिए मज़बूर करती है। इसलिए सुकांत जैसे कलाकार बनने के लिए इच्छुक सैनिक को उसके काम में पूर्ण रूप से मन नहीं रख्र सकता । युद्ध में यात्रा में पूरे जीवन में वह उसके अन्दर के चित्रकार को मोड देने के लिए प्रयत्न करते है। उसपर एक सैनिक की जैसे राजनीतिक, सामाजिक यथार्थताओं से संबंध नहीं। वह युद्ध के भीषण दृश्यों को भी एक चित्रकार की पैनी दृष्टि से वर्णन करते है ।

निष्क्रियता एक प्रकार की विद्रोही मानसिक स्थिति है । सुकांत इस प्रकार का कलाकार है । वह अपनी ज़िन्दगी को भूलकर कला के पीछे भागने के लिए अशक्त है । एक

प्रदर्शनी के आयोजन से सैनिक ज़िन्दगी की पूरी संपत्ति उससे छूट जाती है । फिर वह निवप्रम के आफीसर बनते है। वह भी चित्रकला की उन्नति के रास्ता ढूँढकर निकाला गया काम है । लेकिन समाज की विभिन्न विसंगतियों पर उलझनेवाला सुकांत अपने अन्दर जो कलाकार है उसे अन्दर ही अन्दर धमकी देकर रखने की प्रतिक्रिया करते है । यह कलाकार यथार्थ ज़िन्दगी का एक हिस्सा है ।

वह चित्रकला के शौक को एक शाप के जैसे मानते है । वह कहते है चित्रकला के लिए पेंड, ब्रश ,कानवास ऐसे कई महँगी वस्तुएँ चाहिए, गरीबी लोगों के लिए यह आसान नहीं । सुकांत सोचते है पूर्वी अंचल पर बन रही विशाल म्यूरल पेन्टिंग में कुदरत का चितेरा अभी जस्ते, सुरमे और सफेदे के मिले-जुले रंग ही भर रहा था। गुलाबी, लाल और सुनहले रंगों में अभी उसने अपनी कूँची नहीं बोरी थी । सुकान्त खोया-खोया सा, टकटकी बाँधे थोडी देर उधर देखता रहा । .... उसके मन में चित्रकारी करने का बडा साध था। मगर पहले वह जीवन की रंगशाला को देख तो ले । सुकांत के कलाकार पात्र की प्रस्तुति से उपन्यासकार कला की ज़िन्दगी के पक्ष पर प्रकाश डालते है ।

४.३.४ चित्रकार और आत्मसंघर्ष – एक चूहे की मौत में

यह एक मनोविश्लेषण वादी उपन्यास है । इसमें पात्रों को प्रतीकों के द्वारा प्रस्तुत किया है । 'ग', 'प' दो कलाकार पात्र है । यह स्वतंत्र भारत के सरकारी कर्मचारियों के घुटन भरी अरोचक ज़िन्दगी का चित्रण है ।

'ग' एक सहज चित्रकार है । लेकिन पारिवारिक संबंध उसे पूर्ण रूप से चित्रकार होने से इनकार करते है । 'ग' सारे सरकारी कर्मचारियों को घृणा की दृष्टि से देखते है । वह

ऐसे कहते है – "तुम सब चूहे मारते-मारते खुद भी चूहे बन गए हो ।"[19] 'ग' बडे अफीसरों की परवाह नहीं करता था। 'ग' बडे चूहेमार के सामने भी छाती फुलाकर जाता है । वह ऐसे सोचते है कि उसके और बडे चूहेमार के बीच कोई फर्क नहीं है ।

'ग' पूरे सामाजिक विघटनों के प्रति विद्रोह करते है । वह सरकारी कार्यालयों में युगों से प्रचलित कार्य-प्रणाली को चुनौती दे रहा है । वह बडे आफीसरों की धमकियों से डरते नहीं। 'ग' ने एक चित्र बनाया है उसमें एक बडा चूहा है । और उस चित्र का नाम है 'चूहे मार'। यह चित्र सरकारी कर्मचारी का प्रतीक है। वह सरकारी कामकाज को चूहे मारने की प्रक्रिया जैसे मानते है।

'ग' कहते है– सरकारी कामकाज मनुष्य को चूहे के रूप में बदल देते है । 'ग' का सहकर्मी 'वह' ने उसे कई बार समझाया । वह जानते है 'ग' के अन्दर जो चित्रकार है वह उसे समाज के प्रति विद्रोही बना देता है । एक बार वह 'ग' से चित्र बनाना छोड देने के लिए तब ग का जवाब उसके अन्दर जो चित्रकार है उसका प्रभाव समझाते है – "चित्र बनाना छोड दूँ ! क्या मैं छोड़ भी सकता हूँ कभी ? तुम समझते हो मुझे बनाने का शौक है ? क्या मैं इन्हें अपनी इच्छा से बनाता हूँ । चित्र तो खुद-ब-खुद बन जाते है । मुझे तो पता भी नहीं होता कब और कैसे बन गए ।"[20] उस पर चूहेख्राने के काम से कोई शौक नहीं वहाँ माँ के ख्रयाल से काम करते है । वह माँ के मरने की राह देख्र रहे है । माँ के प्रति इतने कठोर होने का कारण भी उसका लिजलिजापन है ।

माँ के मरने से 'ग' स्वतंत्र बन जाते है । वह दूसरे कर्मचारियों के समान रोटी की परवाह नहीं करके चूहेख्राने के ऊब भरी ज़िन्दगी से विमुक्त हो जाते है । लेकिन गरीबी की

यथार्थता मनुष्य को सब कुछ गिरवी करा देती है । 'ग' ने सहज कलाकारिता पर समाज की असमंजसता को भी व्यक्त किया है । उनके चित्रों के लिए ग्राहक नहीं थे । लेकिन उस पर विश्वास था कि एक ही एक दिन उनके चित्रों का मूल्य दूसरों को समझ मिलेगा ।

उपन्यास के अंत में इस उपन्यास के नायक 'ग' का सहकर्मी 'वह' को 'ग' की मृत्यु के बाद उसके चित्रों को समझने लगे। उनके चित्रों में चित्रित सरकारी कर्मचारियों के ऊब भरी यान्त्रिक जीवन का जानकारी 'वह' को पूर्ण रूप से एक चूहा बना दिया ।

'प' समाज के कुटिल व्यवस्थिति के चालाक का प्रतीक है । वह सहज चित्रकार नहीं एक सक्षम व्यापारी है। उसे चित्रों से नाम और धन समेटने की रुचि है । वह सहज कलाकारों पर अपना दाँव-पेंच करते है । उसको कला पर, कलाकार पर, सरकारी व्यवस्था पर कोई आस्था नहीं वह छल कपट से अपनी जेब और पेट भरनेवाला नामी कलाकार है । उसको आत्मसंघर्ष की भावना भी नहीं होगी ।

४.३.५ अभिनेत्री और आत्मसंघर्ष – मुझे चाँद चाहिए में

वर्षा के आत्मसंघर्षों के प्रमुख कारण पारिवारिक गरीबीपन और समाज के मध्यवर्गीय परिवार की महत्वाकांक्षाएँ है । वह जाति से ब्राह्मण परिवार की नारी है । इसलिए उसे समाज के नियम कायदे के जाल से मुक्ति नहीं है ।

नारी होते हुए भी उसके अंतर समाज के प्रति विद्रोह भावना है । यह विद्रोह भावना समय और संदर्भ के अनुसार पनपने का अवसर उसे दिव्या कत्याल जैसे अध्यापिका से मिली । वर्षा ने पूर्ण रूप से इस सहारे से लाभ उठाए । वर्षा उनके समाज के पैसा कमानेवाली कन्याओं में पहला बन गयी थी । वह मध्यवर्गीय नारी के छोटे दायरों से नफरत करती थी । वह

आसमान को छूने के लिए शकुन्तला के वनवल्लरी सहेली बनने के लिए चाहती है । लेकिन उस समाज में मध्यवर्गीय परिवार की नारी के लिए लोवर डिविषन क्लार्क की पत्नी बनकर दहेज के नाम से उनके रसोईघर में ज़िन्दगी नष्ट होने तक का मोह ही होना चाहिए था ।

वर्षा के अन्दर समाज के प्रति विद्रोह की भावना है । इसलिए वह परंपरा और परिवार को छोडकर नाटक अभिनेत्री बन जाती है । कला सामाजिक कुनीतियों पर दावें प्रकट करने का सशक्त माध्यम है । इसलिए वह नाटक के द्वारा अपनी इच्छाओं के अनुसार शकुन्तला की वनवल्लरी सहेली से लेकर आसमान के चाँद तक प्रशस्त बन गई । इन अभिनय कला की प्रेरणा उन्होंने अन्तर्मन के पारिवारिक और सामाजिक तंत्रों के बन्दे हुए जंजीरों से प्राप्त किया है ।

अकेलापन, अस्तित्व की खोज ये सब उनके आत्मसंघर्षों को उत्तेजना देते है । यह उसके अन्दर के कलाकार को नाटक मंच पर अभिनय करने की प्रेरणा प्रदान करता है ।

चेखव की कहानी 'हंसिनी' के मंजन के समय उसे नाटक का नीना के चरित्र ने उसको आकर्षित कर दिया । उस चरित्र की आंतरिक बुनावट का आधार वर्षा ही है । नीना के चरित्र की पारिवारिक रूपरेखा, रंग कामना और कला ललक में वर्षा ही स्पंदति हो रही थी। सीगल का मॉस्को आर्ट थिएटर का पहला सार्थक प्रदर्शन के बाद उसको ऐसा लगा कि चेखव ने शाहजहाँपुर में दूर-दूर से वर्षा को स्टडी किया था ।

नीना की ज़िन्दगी की असफलता वर्षा के आँखों को भर देती है । "मनुष्य शेर, गिद्ध .... और सभी जीवात्माएँ अपना दुखभरा चक्र पूरा करके विलुप्त हो चुकी है । हज़ारों वर्षों से धरती पर एक भी जीवात्मा ने साँस नहीं ली और इस बेचारे चाँद की लालटेन बेकार जल रही है । यहाँ सर्दी है, खलीपन और भय। सभी प्राणी धूल में बदल चुकने के बाद चट्टान, पानी

और बादल बन गए हैं । सारी आत्माएँ ख़ुलमिलकर एक हो गयी है और मैं इस सारे संसार की आत्मा हूँ । मेरे भीतर अलेक्जेंडर महान्, सीज़र, शेक्सपियर, नेपोलियन और सबसे ख़ूँख़ार जंगली जानवर समाये हैं । मुझे सब कुछ याद है और मैं हरेक ज़िन्दगी को नये सिरे से जी रही हूँ ।"[21] यह आत्मविश्वास वर्षा के मन की कलाकारिता को आगे बढाते है । उसने अपने आत्मसंघर्षों को कई नाटकों में मूर्तरूप प्रदान कर दिया ।

वर्षा कला की गौण उत्पन्न यश से ज़्यादा अपने आंतरिक गुणों को महत्व देती है ।

४.३.६ संगीतकार और आत्मसंघर्ष – दूध गाछ में

इसमें परंपरा के प्रति युवापीढी की अनिच्छा से पीडित कलाकार पिता का दुख्र है । रुद्रपदम शास्त्रीय संगीत परंपरा के महान कलाकार है । लेकिन उसके पुत्र ने इससे विमुख्र होकर फिल्मी संगीत के रास्ते को अपनाया है । लेकिन वह एक महान शिष्य की संपत्ति से संतुष्ट है । वह कला के महत्व और परंपरा को उद्धृत करके ऐसे कहता – "भगवान, बुद्ध कह गए बहुत से बुद्ध मुझसे पहले आये, बहुत से पीछे आयेंगे । मैं पुराने प्रकाश को फिर से फैला रहा हूँ .... एक परंपरा को चलाता है शिष्य, दूसरी को पुत्र"[22] यह रुद्रपदम के अंदर के संघर्ष का शब्द है ।

रुद्रपदम के अनुसार शास्त्रीय संगीत और फिल्मी संगीतों के बीच देवासुर-संग्राम है । इसमें देवता शास्त्रीय संगीत के साथ है । परिवारवालों को कला में जीवनपक्ष पर अधिक ध्यान है । कला को देवी प्रसाद के रूप में समझने वाले पिता को संगीत को पैसों से मोल तोल करके बिकने वाली सिनेमा जगत से होने वाले पुत्र संघर्षें में डूब देते है ।

शंखधरन अपने गुरु की इच्छा के अनुसार शासत्रीय संगीत के क्रमिकविकास के लिए कार्यरत होने के लिए तैयार थे । लेकिन गोविन्दन उसे बंबई ले गया । रास्ते में वह कई प्रकार की जटिलताओं से उलझ गए थे। उसे वर्कला ही पसंद था । लेकिन गोविन्दन को इनकार करना भी उसके लिए कठिन था ।

इस उपन्यास की नारी पात्र इरा अभिनय कला पर प्रभावी पात्र है । उसकी माँ मैना ज़िन्दगी के काले कटहरे में वेश्या के जीवन बिताते थी । उसकी पुत्री होते हुए भी इरा में देवी सदृश आत्मसम्मान और ममतामयी दृष्टिकोण है । यह इरा के दो विभिन्न प्रकार के वातावरण का फल है । कला की महत्वपूर्ण धाराएँ उसे गिरी पिट्टी वातावरण से बहुमूल्य कलाकार बनाती है ।

४.३.७ अभिनेत्री और आत्मसंघर्ष – आखिरी अढाई दिन में

मीनाकुमारी कलाकार क्षेत्र की नारी पात्र का आंतरिक संघर्षों का प्रतीक है । इस उपन्यास में आर्थिक और पारिवारिक संघर्षों की भोल भाला है । इसके साथ फिल्मी अभिनेत्री पर समाज की गिरी पिटी मानसिकता से सामाजिक संघर्ष की झांकी भी इसमें दीख्र पड़ती है ।

गरीबी में पनपते छोटी मीनाकुमारी के लिए अभिनय पेट की ख्रुशी के लिए था। लेकिन यह उसको परिवार में अस्तित्व बना दिया । बाबू जी ने उस दिन पहली बार उसी तरफ प्यार की नज़र से देख्रा और पीठ थपथपाई । लेकिन ख्रोए हुए शैशव के सौभाग्यों पर वह अब भी दुःख्री है । शैशव में यतीमख्राने की सीढियों पर उपेक्षित बच्ची को घर की गरीबी को टालने की शक्ति मिली । यह उसके मन को फिल्मी जगत से दूर रहने से रोका ।

मानव जीवन की शाश्वत प्रवृत्ति का नाम 'काम' है । व्यकित की अतृप्त इच्छा,

कामना उसके व्यक्तित्व में तीव्र व्रिदोह उत्पन्न कर देती है कभी कभी यह नैतिक से अनैतिक की ओर बढ जाती है।

ऐसी एक नियति मीनाकुमारी की ज़िन्दगी में भी आयी । उसने तीन बच्चों के पिता सपत्नी कमाल अमरोही को पति के रूप में अपनाया । यह उनकी पूरे ज़िन्दगी को संघर्षों के कटहरों में बंद कर दिए । कमाल अमरोही मीनाकुमारी को सोने के अण्डे डालने वाली मुर्गी के रूप में मानते थे। इसलिए वह उसे एक पत्नी के रूप में मानने के लिए तैयार नहीं थे ।

फिल्मी सेट की काका को उसे बेबी मीना होने से परिचित है वह उसके काम में आई हुई उन्नति को अधिक प्यार से देखते रहते है । उन्होंने एक दिन मीनकुमारी से पूछा – "आप ने शादी तो बनाया । अभी तक कोई फूल नहीं खिलाया ।"[23] यह उसके मन को भारी कर दिया । वह काका से कुछ कहने चाहती थी। लेकिन षोट रेडी होने के कारण उसे सेट पर जाना पड़ा । वह अपने उभरे गए दिल को संभालते अपने काम में डूब गई ।

वह कई बार सोचती है – "इतनी सारी पाबंदियाँ ? कोई गुनाह है ? क्या कलाकार होना, ख़ासकर एक हीरोइन ? क्यों नहीं है इन्हें किसी पर विश्वास ? क्यों नहीं है इन्हें भरोसा कि हम अब बडी हो गई है, और अपना भला-बुरा खुद भी सोच सकती हैं समझ सकती हैं। क्या ये ही चलाते रहेंगे ऊँगली पकड़ के हमें ज़िन्दगी भर ?"[24] यह मीनाकुमारी के अंतसंघर्षों के शब्द है । उनकी ज़िन्दगी में जितने दुखों को उसे झेलना पड़ा वे सब उन्होंने फिल्मों में पात्रों के रूप में बहिर्गमन कर दिया । इसलिए उसने पेट में सूजन से भरी हुई स्थिति में भी फूला हुआ पेट को अपनी साड़ी से बाँधकर अभिनय किया । और ऐसे उसके पेट पर ख्राव पैदा हुआ था । ये सब एक नारी के सहन की सीमाओं को लाँघने वाली समस्याएँ हैं ।

४.३.८ लेखक और आत्मसंघर्ष – अमृत और विष में

अरविंद शंकर नामक उपन्यासकार षष्टिपूर्ति के दिन प्रशंसा समारोह में हरएक की स्नेह भरी बातों के बीच भी उसके अंदर संघर्ष चल रहे है । कई पीढ़ियों से सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और पारिवारिक स्तर पर सुशक्त अरविंद शंकर को बदलते हुए परिवेश से कई तरह के आत्मसंघर्षों को सामना करना पड़ता है । अंग्रेज़ों ने भारतीयों को उनके शासन काल में कष्ट दिलाते थे लेकर आज़ादी के बाद जो शासन भारतीयों ने चाहा उस पर अधिकतर लोग निराश हो गये । वह स्वतंत्र भारत की राजव्यवस्था और कानून से कट्टर विरोध करते थे । इन लोगों ने व्यक्ति का स्वाभिमान नष्ट कर दिया । ईमानदार लोग मूर्ख माने गए, जो समाज की जड़ रूढिवादिता पर अँगुली उठायी उन लोगों को कम्यूनिस्ट बुलाया । इस राजनैतिक संघर्षों से चिन्तित उपन्यासकार को पारिवारिक जडकनों ने भी अस्वस्थ कर दिया ।

अर्न्तमन से इन बातों ने उनके कानों को फाड कर दिया । यह व्यक्ति पूजा पाने के योग्य नहीं । इसके लंपट बेटे ने मेरी सुन्दर सुशीला और साध्वी बेटी को पहले तो अपने प्रेम पाश में फँसाया, मुझे उसके अन्तर्जातीय विवाह के लिए सजातीय कलंक सहना पडा और अब उसे तथा अपनी दो सन्तानों को निराधार छोड़कर उसने एक कुलटा प्राध्यापिका को अपना तन-मन अर्पित कर रखा है। और ये, महान् लेखक, उदार और न्यायवान कहलानेवाला नीच अरविन्द मेरे बार-बार लिखने पर भी अपनी पुत्र-वधु और पोतों को अपने पास बुलाकर नहीं रखता। मेरे पत्रों का उत्तर नहीं देता । मेरे जैसे दीन-हीन बूढे क्लर्क की गृहस्थी पर खर्च का एक अतिरिक्त बोझ डालते हुए इसे शर्म नहीं आती ।[25] यह उसके अन्तर के आर्थिक संघर्षों पर इशारा करती है ।

अरविंद शंकर के बेटे विनय शंकर और उमेश शंकर दोनों से उनको कोई

आर्थिक सहारा नहीं मिलते है । और एक बेटा उससे फिसल गए पत्नी परिवार से बिछुडकर रहते है। बेटियों में बडी बेटी के छह वर्ष पहले के विवाह का कर्ज अभी तक नहीं पूरा हुआ है । छोटी बेटी वरुणा चार वर्षों से क्षय ग्रस्त है। इस वातावरण में हाथ से फिसल गए बेटे की पत्नी और पोतों को अपने साथ रखने के लिए उनके आर्थिक धरातल फीका पड गया है ।

अरविंद जी ने एक प्रकाशक से उपन्यास लिखने के वादा करके डेढ साल से पहले दो हज़ार रुपए माँगते थे । अभी तक उसे उपन्यास या पैसे वापस नहीं कर सकते थे। समारोह के पहले दिन उस प्रकाशक से एक धमकी देने वाली चिट्ठी उसे मिली थी । वह चिंता भी उसके मन को मंथन करती है ।

तीसरा संघर्ष यह है कि अरविंद शंकर की सबसे छोटी बेटी वरुणा चार साल से क्षय ग्रस्त है लेकिन कल उसे देखने के लिए आये हुए प्रस्तावित वर को और उसके पिता को उनकी बेटी की बीमरी के बारे में अभी तक कुछ नहीं कहा है । अरविंद शंकर नामक साठ साल का उपन्यासकार इस विरुद्ध संवेदनाओं के बीच उलझते हुए कहते है – "मन में हीनता का तीव्र बोध लेकर बैठा हुआ मैं अपने महत्व सुना रहा हूँ ।"[26]

उसके मन मस्तिष्क उसे सम्मान समारोह से भागने के लिए मज़बूर करते है । लेकिन बेटे उमेश के लिए मुख्यमंत्री और बडे बडे राजपुरुषों के साथ एक प्रियभोजन में भी उसको भाग लेना है। उन्होंने उमेश के बारे में ऐसे सोचा है कि वह पिताजी के परिचितों और मित्रों से उनके आइ.ए.एस की पदवी मिलने की सहायता चाहते है । इसलिए उसने इन सबका आयोजन किया है । बाहरी तौर पर उस सभा का आयोजन नगर कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष ने अपने चार ख़ुशामदी साहित्यिकों को घेरकर कराया है । दो वर्ष पहले वह उनके रिश्तेदार को लेखक के पैतृक ज़मीन हड़पने के लिए सहारा देते थे ।

लेखक अपने भाषण में अपने विकास का ब्यौरा देने के बहाने अपने जीवन का सारा पाप और पुण्य को उस मंच पर छान-बीन कर दिया । यह उमेश को दुख पहुँचाया । वह घर छोडकर गए । लेकिन समारोह के बाद वह 'हेमिंग्वे' का 'बूढा मछेरा' के समान उपन्यास लिखने के लिए तैयार हुए है ।

वह परसों बाज़ार से देखे दो नव युवकों के दृश्य से उपन्यास का श्री गणेश करना चाहते है। उसमें नौजवानों की आशाओं-आकांक्षाओं और कुण्ठाओं को चित्रित करना चाहता है । उपन्यास में वे पुरोहित पुत्ती गुरु का बेटा राजेश को लेखक की जिह्वा बनाते है । पुत्रों द्वारा अनुभव किए विसंगतियों को विभन्न पात्रों के द्वारा प्रस्तुत करते है । उन सब भयावहताओं से अलग समाज की सुविधा के लिए प्रयत्न राजेश को उपन्यास का नायक बनाते हैं ।

उपन्यास में लेखक ने अन्तर्जातीय विवाह, प्रेम-विवाह, विधवा विवाह को प्रोत्साहन दिया है । रमेश जैसे महत्वाकांक्षी पात्र के द्वारा लेखक समाज में फैली बुराइयों पर ऊँगली उडाने का प्रयत्न उन्होंने किया है ।

लच्छू जैसे पात्र से समाज के अन्तर्विरोधों से भटकने वाली युवापीढी के प्रतीक का भी चित्रण किया है ।

४.३.९ चित्रकार और आत्मसंघर्ष – पापा जाने के बाद में

इस उपन्यास के पहले पन्ने पर प्रकाश मनु के शब्दों में – "उपन्यास के बारे में ऐसे कहा गया है कि 'पापा के जाने के बाद' यों तो एक दुर्द्धर्ष चित्रकार की अनूठी जिदों-भरे पागलपन और मर्मातक जीवन संघर्षों की कथा है ।"[27]

प्रकाश मनु स्वयं कहते है " 'पापा के जाने के बाद' उसके भीतर बरसों से जड जमाए हुए, कोई बेशर्म किस्म का 'भूत' है जो पिंड छोडता ही नहीं, और जब देखे, तब अंधेरे बियाबानों से आकर सिर पर सवार हो जाता है । यह उपन्यासकार का आत्मसंघर्ष का वक्तव्य है ।"[28]

बाह्य संघर्षो के रूप में इसमें आर्थिक संघर्ष है। नन्दिनी को कभी कभी कॉपी-किताब नहीं होती थी और फीस के पैसे नहीं थे । गरीबी की अवस्था के बारे में नंदिनी की राय यह है कि "घर में पैसा कम होता था तो माँ और पापा में खमखा झगडे होते थे । माँ चिडचिडी हो जाती बिना कारण उसकी पिटाई हो जाती, पापा की इज्जत घर में खुद व खुद कम हो जाती है । घर में पैसा है तो पापा को इज़्ज़त है ।"[29]

एक कलाकार के आत्मसंघर्ष का बाह्य प्रकटन अपने परिवार में ही होते हैं । वसंतदेव पेंटिंग करते समय पुत्री नन्दिनी को उसे बातें करने में बड़ा भय था । वह पेंटिंग को खुद अलग अलग कोणों से देखेंगी । तब वह खुद में डूबे हुए से अपने-आप को समझाते हुए कहते – "अभी नीले का थोडा काम और बाकी है । अभी रैरोज है । इस औरत के चेहरे पर .... थोडा सॉफ्ट करना होगा । अभी पीले में से अच्छी तरह उजास नहीं फूटी ..... अभी आसमानी में लाल का थोडा और शेड ..... ताकि .... ताकि असल में कहते कहते वह खुद कुछ उलझसे जाते । और फिर एक थकी हुई पराजित मुस्कान । .... ऐसी मुस्कान, जिसपर दुश्मन का भी जान निसार करने का दिल करे।"[30]

वसंतदेव पेटिंग पूरा नहीं करते थे। इसका कारण यह है कि कभी कभी चित्र पूरे करने के कोई हफ्ते या दो हफ्ते में उसे बिगाड भी देते है । एक बार वह पूरे चित्र को नीला रंग से पोत दिया । यह केवल वसंत देव को नहीं पूरे परिवार को सिर फटने की तरह महसूस

हुए।

नन्दिनी अपने पिता के काम करने की आदतों के बारे में कहती है – "सचमुच जिस समय वह अपने आप में डूबकर काम कर रही होती, सारी दुनिया उनके लिए स्थगित हो चुकी होती, जैसे सारी की सारी ठिठकी हुई दुनिया, साँस रोककर, हज़ार-हज़ार आँखों से एकटक सिर्फ यह देख रही है कि कलाकार-ए-आजम श्रीवसंतदेव जी इस समय 'रोहनपुर की गलियाँ' शीर्षक पेंटिंग कर रहे हैं ।"[31]

नंदिनी की राय में वसंतदेव को कलाकारों जैसे कलाकार मत सोचिए उस पर तो कला का दौरा पडता था । यह दौरे कई-कई दिनों तक चलते और उतरते ही फिर किसी न किसी तरह से किसी न किसी रास्ते फिर वे उनके सिर पर चढ बैठते ।

उनके चित्रों को उनके अंतिम दो-तीन सालों में बेहद माँग थी । लेकिन तब वह ज़्यादा चित्र न बना सकते थे ।

सब उपन्यासों में चित्रित आत्मसंघर्षों से यह समझ सकते हैं कि बाहरी परिवेश कला को मोड देने में महत्वपूर्ण संभावना प्रदान करता है । उपन्यासों में आत्मसंघर्षों का चित्रण करके उनकी प्रतिक्रिया के रूप में कला की प्रस्तुति हुई है ।

संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. मफत पटेल – हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास – पृ. १३
2. वही – पृ. १५
3. मंजुला गुप्ता – हिन्दी उपन्यास समाज और व्यक्तित्व का द्वन्द्व – पृ. २६
4. राजनारायण शुक्ल – आधुनिकता बोध एवं मोहन राकेश का कथा साहित्य – पृ. ८३
5. डॉ. मफत पटेल – हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास – पृ. १५
6. देवेन्द्र सत्यार्थी – कथा कहो ऊर्वशी – पृ. ७९
7. मोहन राकेश – अन्धेरे बन्द कमरे – पृ. ४६७
8. गिरीश अस्थाना – धूप छाँही रंग – पृ. १२०
9. बदी उज़्ज़मा – एक चूहे की मौत – पृ. ३६
10. सुरेन्द्र वर्मा – मुझे चाँद चाहिए – पृ. २०
11. देवेन्द्र सत्यार्थी – कथा कहो ऊर्वशी – पृ. ३०
12. वही – पृ. ९३
13. मधुप शर्मा — आखिरी अढाई दिन – पृ. ६१
14. अमृतलाल नागर — अमृत और विष – पृ. ३४
15. प्रकाश मनु — पापा के जाने के बाद – पृ. ९३
16. वही – पृ. ९८
17. देवेन्द्र सत्यार्थी – कथा कहो ऊर्वशी – पृ. १९८
18. मोहन राकेश – अन्धेरे बन्द कमरे – पृ. ४६७
19. बदी उज़्ज़मा – एक चूहे की मौत – पृ. २५
20. वही – पृ. २८
21. सुरेन्द्र वर्मा – मुझे चाँद चाहिए – पृ. १३२

22. देवेन्द्र सत्यार्थी – दूध गाछ – पृ. ७०

23. मधुप शर्मा — आखिरी अढाई दिन – पृ. ९५

24. वही – पृ. ५६

25. अमृतलाल नागर — अमृत और विष – पृ. २४

26. वही – पृ. २५

27. प्रकाश मनु — पापा के जाने के बाद – आवरण से

28. वही – पुनश्च से

29. वही – पृ. ४४

30. वही – पृ. ४३

31. वही – पृ. ९७

उपसंहार

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के पाँच अध्यायों में कला, कलाकार और आत्मसंघर्ष के बारे में विचार करते हुए हिन्दी साहित्य के उपन्यासों में प्रस्तुत कलाकार पात्रों के आत्मसंघर्ष पर मैंने अध्ययन किया है । उसके आधार पर उपसंहार के रूप में निम्न लिखित निष्कर्ष पर हम पहुँच सकते हैं।

आधुनिक युग की मषीनवत ज़िन्दगी में मनुष्यता का बोध दिलाने वाली कला मानव चेतना का आधार है । स्वातंत्र्योत्तर परिवेश के मूल्य परिवर्तन, भूमंडलीकरण और उपभोगवाद मानव को विद्रोही बना देते है । कला भी एक प्रकार का विद्रोह है । लेकिन कलाकार प्रतिक्रिया को उदात्तीकरण के द्वारा किसी उच्चतर लक्ष्य से संबंध कर देता है । इसलिए संवेदनशील कलाकार विसंगतियों पर समाज के पक्ष से विद्रोह कर सकते है । कला और कलाकार एक स्वस्थ समाज का विरासत है ।

मनोवैज्ञानिक तौर पर कलाकार का आत्मसंघर्ष का कारण बाह्य उद्दीपन की अपेक्षा आन्तरिक विशेषता है । कलाकार अधिक संवेदनशील होते है । वे समाज की विसंगतियों को अपने अचेतन मन से छान-बीन करते हैं । इन विसंगतियों की प्रतिक्रियाओं को प्रत्यक्ष प्रकट करने के बिना प्रतीकों और प्रतिबिंबों के द्वारा प्रस्तुत करते है ।

कला मानव को परंपरा से जोड़कर रखती है । परंपरा की आस्थाओं के न्याय-अन्यायों को कला के द्वारा पुनर्मूल्यांकन कर सकते हैं । कला मानव और प्रकृति या ईश्वर के संबंध को मज़बूत करती है ।

आधुनिक आर्थिक व्यवस्था के खोखलेपन को कला के द्वारा ही व्यक्त कर सकते हैं । सृष्टि का आविर्भाव मन के अन्तर गहवरों से उत्पन्न हो जाते है उसमें धन के प्रभाव होने से कला अपूर्ण हो जाती है । ज़िन्दगी के परिवर्तनशील परिवेश मनुष्य मन को कई विरुद्ध भावनाओं के भंडार बन जाते है । कला के प्रत्यक्षीकरण से अन्तर्मन की घुटनें कम हो जाती है । यह स्वस्थ शरीर के लिए अनिवार्य है । यह कला की अनुकृति से भी संभव है । कभी कभी कला की अनुकृतियों को एवं अनेक कार्यकर्ता को भी कलाकार कहते है । इसका कारण यह है कि आन्तरिक मन की विसंगतियों के बहिर्गमन से व्यक्ति के मानसिक पटल पर सकारात्मक ऊर्जा पैदा करता है । यह व्यक्ति को कलाकार के समान स्वच्छ बना देता है ।

कला मानव की संवेदनाओं को छूनेवाला सत्य है । इसलिए कला की अनुकृति में शास्त्रीयता की पहचान होनी चाहिए । नहीं तो कला नकारात्मक ऊर्जा प्रदान करेंगी । कला के क्षेत्र का मूल्यशोषण कला में अशास्त्रीयता का आविर्भाव पैदा करता है । कला का बहिर्गमन संवेदनाओं के कच्चा प्रतिकरण नहीं होना चाहिए उसमें प्रतीकों और प्रतिबिंबों को माध्यम बनाना चाहिए । यह कला का शास्त्रीय दृष्टिकोण है ।

बदलते परिवेश समाज पर कई प्रभाव डालते हैं जिसने कला को भी प्रभावित किया है । कला मानव के अन्तर्मन से संबंधित तत्व होती है । इसलिए यह विभिन्न व्यक्तियों पर विभिन्न प्रतिक्रिया पैदा करती है । साहित्यकारों में भी यह बहुलता हमें देखने को मिलती है । कला को शब्दबद्ध करते समय कला के प्रति उन साहित्यकारों के दृष्टिकोण हम समझ सकते हैं ।

देवेन्द्र सत्यार्थी के 'कथा कहो ऊर्वशी' मूर्तिकार की परंपरा और उनकी धार्मिक आस्थाओं पर प्रकाश डालते है । पौराणिक कथा तंतुओं से बुने गए यह उपन्यास आर्थिक,

सामाजिक और राजनीतिक धरातल पर इन कलाकारों के रूप परिवर्तन को भी दिखाते है। लेकिन अंत में मूर्तिकार की रूढीवादी परंपरा का पुनरागमन की प्रतीक्षा उपन्यासकार करते हैं ।

मोहन राकेश के 'अन्धेरे बंद कमरे' में एक नृत्य कलाकार का चित्रण है । स्वातंत्र्योत्तर परिवेश में आधुनिकता के अन्धानुकरण से कलुषित व्यक्तियों के बीच उपन्यासकार ने नीलिमा को प्रस्तुत किया है । नीलिमा में कलाकार के सहज आत्मसंघर्ष की कमी है । लेकिन वह बाह्य संघर्षों से उत्पन्न आंतरिक संघर्षों को कला के द्वारा मुक्त करती है । एक नारी होने के बावजूद रूढीवादिता से परिवार ने उसे कलाभिव्यक्ति से दूर रख दिया है । नारी के सीमित दायरों ने कलाभिव्यक्ति की आज़ादी को भी तोड लिये है । नारी को गृहिणी के रूप में सीमित करने में उपन्यासकार की रूढीवादी भावना को भी इस उपन्यास में अंकित किया गया है ।

गिरीश अस्थाने का 'धूप छाँही रंग', बदी उज्ज़मा का 'एक चूहे की मौत' और प्रकाश मनु के 'पापा के जाने के बाद' में चित्रकार के आत्मसंघर्षों को रूपायित किया है । 'धूप छाँही रंग' के कलाकार सुकांत और 'एक चूहे की मौत' के 'प' कला को जीवन के लिए मानते है। इसलिए इन दोनों पात्रों के द्वारा उपन्यासकार ने कला और आर्थिक व्यवस्था के संघर्षों और विसंगतियों का चित्रण किया है । 'एक चूहे की मौत' का 'ग' और 'पापा के जाने के बाद' का वसंतदेव में कई समानताएँ हमें छू लेती है । वे दोनों कला को कला के लिए मानते हैं । इसलिए उन पात्रों के लिए कला की सफलता अर्थ से नहीं अलौकिक आनन्द से है । ये दोनों पात्र कलाकार के आत्मसंघर्षों को पूर्ण रूप से झेलते मानव से अतिमानव की प्रस्तुति करते हैं।

सुरेन्द्र वर्मा के 'मुझे चाँद चाहिए' में नारी को सीमित दायरों से विभक्त कर

अभिनय कला के उत्तुंग शिखर पर प्रस्तुत किया है । 'वर्षा वशिष्ट' मध्यवर्गीय ब्राह्मण परिवार के अंग है । कुलमहिमा और गरीबी के बीच उत्पन्न विरोधी भावनाएँ वर्षा को परंपरा और रूढी को तोडने की शक्ति प्रदान करती है । एक नारी की विभिन्न संवेदनाओं को वर्षा कलाभिव्यक्ति के द्वारा विरेजन करती है । यह उसको महान अभिनेत्री बनाती है । सामाजिक और पारिवारिक बाह्य संघर्षों के आधार से उत्पन्न आत्मसंघर्षों का प्रकाशन इस उपन्यास में साकार हुआ है ।

मधुप शर्मा का 'आखिरी अढाई दिन' मीनाकुमारी के जीवनीपरक उपन्यास है। इसमें फिल्मी जगत के चमकते तारों के विषमग्रस्त वैयक्तिक जीवन के पर्दाफाश करते है । यह कलाकार के सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक संकटों से उत्पन्न आत्मसंघर्षों का आत्मालाप है ।

अमृतलाल नागर का 'अमृत और विष' एक लेखक के आत्मसंघर्षों के व्यावहारिक अनुभव है । इसमें लेखक के अन्तर्मन को प्रभावित विभिन्न, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, वैयक्तिक बाह्य संघर्षों के प्रतिफलन है । लेखक अपने साठ साल की ज़िन्दगी से उत्पन्न दमित अंत:संघर्षों को अपने उपन्यास के नायक रमेश के माध्यम से सकारात्मक रूप में प्रकट करते हैं । यह कलाकार की महान प्रतिभा की प्रस्तुति है ।

विभिन्न प्रकार के कलाकारों के माध्यम से उपन्यासकार ने कलाकार के आत्मसंघर्ष पर प्रकाश डाला है । बाह्य संघर्षों का प्रभाव वैयक्तिक तौर पर विभिन्न है । ऊँची संवेदना और उदात्त प्रतिक्रिया कलाकर को साधारण व्यक्ति से अलग कर देती है । साधारण व्यक्ति की प्रतिक्रिया अबोध मन का नकारात्मक विस्फोटन होते है । कलाकार संघर्षों को अचेतन पटल से उदात्त बनाकर सकारात्मक ढंग से प्रकट करते हैं । यह प्रतिक्रिया केवल व्यक्ति पर नहीं पूरे समाज पर असर डालती है ।

कला का महत्वपूर्ण लक्ष्य अलौकिक आनन्द की प्राप्ति है । धन और कीर्ति सार्थक कलाकार के पीछे आने वाले तथ्य है । इन तथ्यों के लिए कला का निर्माण अनर्थ और अपूर्ण है ।

प्रत्येक प्राणी वातावरण के अनुकूल बनाने चाहते हैं । यह सुखेप्स सिद्धांत कला निर्माण का उद्दीपन है । आन्तरिक संघर्षों की मुक्ति इन संघर्षों के विरेचन से होती है । कलाकार के अतिसंवेदनात्मकता कभी कभी पागलपन तक आते है । और इसके असमर्थ प्रस्फुटीकरण कलाकार को आत्महत्या तक ले जाते है । कलाकार को नशाबंधी करने का कारण भी इससे भिन्न नहीं । नशाओं के प्रयोग अधिक से अधिक कलाकारों को रोगग्रस्थ बना जाते हैं । ऐसे कलाकारों की कष्टपूर्ण स्थिति के चित्रण से कलाकार नशा की बुराई पर प्रकाश डालते हैं ।

कलाकार का आत्मसंघर्ष बाह्य संघर्षों के कारण नहीं यह उनके अन्तर्मन की सविशेषता है । इसलिए बाह्य संघर्षों की मुक्ति कलाकारों को अंतःसंघर्षों से विमुक्त नहीं करती है। सच्चा कलाकार भरे-पूरे वातावरण में भी दूसरों की कष्टताओं को मोल लेते हैं । नहीं तो संघर्ष से मुक्त परिवेश से संघर्ष की ओर दीपक के पास पतंग के समान कलाकार आकृष्ट हो जाते हैं ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

आधारग्रन्थ

१. देवेन्द्र सत्यार्थी : **कथा कहो ऊर्वशी**
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण १९६१

२. मोहन राकेश : **अन्धेरे बन्द कमरे**
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण १९६१

३. गिरीश अस्थाना : **धूप छाँही रंग**
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
संस्करण १९७०

४. बदी उज्ज़मा : **एक चूहे की मौत**
प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण १९७९

५. सुरेन्द्र वर्मा : **मुझे चाँद चाहिए**
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण १९९३

६. देवेन्द्र सत्यार्थी : **दूध गाछ**
प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण १९९५

७. प्रकाश मनु : **आख़िरी अढ़ाई दिन**
किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण २००६

८. अमृतलाल नागर : **अमृत और विष**
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
संस्करण २००७

९. प्रकाश मनु : **पापा के जाने के बाद**
किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण २०१०

सहायकग्रन्थ

१. आचार्य काका कालेलकर (सं) : भारतीय काव्य सिद्धान्त
डॉ. नगेन्द्र लोकभारती प्रकाशन

२. डॉ. अनिता : एक साहित्यिक की डायरी – अस्तित्वबोध
का दर्शन – मुक्तिबोध
जवाहर पुस्तकालय

३. रामपूजन तिवारी : पाश्चात्य काव्यशास्त्र
राधाकृष्ण प्रकाशन

४. डॉ. नत्थूलाल गुप्त : प्राचीन भारतीय विद्याएँ एवं कलाएँ
चेतना प्रकाशन

५. के.पी. नारायण पिषारोडी : कलालोकम्
केरल साहित्य अकादमी

६. के. आर. पिषारोडी : नम्मुडे दृश्यकला
साहित्य प्रवर्तक सहकरणसंघम् लिमिटेड

७. डॉ. जगदीश चंद्रिकेश : वैदिक कालीन रूपंकर कलाएँ
अनन्या प्रकाशन

८. जगतार जीत : कलाकार और कृति
आरावली बुक्स

९. सत्यदेव त्रिपाठी : उपन्यास का सौंदर्यशास्त्र
मधुमती – जुलाई १९९२

१०. भाऊ समर्थ : चित्रकला और समाज
उषा वैरागकर आठले (अनु) परिमल प्रकाशन

११. आर. जी. कालिंगवुड : कला के सिद्धांत
डॉ. व्रजभूषण पालीवाल (अनु) राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी

१२. हंसकुमार तिवारी : कला
विश्वविद्यालय प्रकाशन

१३. देवीलाल सामर : भारतीय ललित कलाएँ एक परिचय
नक्षत्र प्रकाशन, उजैन

१४. तारिणीचरण दास चिदानन्द कटक : कला और साहित्य
राजपाल एण्ड सन्स

१५. प्रकाश मनु : देवेन्द्र सत्यार्थी - एक भव्य लोकयात्री
प्रतिभा प्रतिष्ठान

१६. विनोद भारद्वाज (सं) : बृहद आधुनिक कला कोश
वाणी प्रकाशन

१७. रूपनारायण बाथम (सं) : पारिभाषिक कला कोश
वाणी प्रकाशन

१८. बालकृष्ण गुप्त : हिन्दी उपन्यास - सामाजिक संदर्भ
अभिलाषा प्रकाशन

१९. डॉ. रघुवंश : साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

२०. प्रो. रणवीर सक्सेना : कला और कलाकार
रेखा प्रकाशन, देहरादून

२१. मीनाक्षी कासलीवाल : ललित कला के आधारभूत सिद्धान्त
राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

२२. शचीरानी गुर्टू : कला के प्रणेता
इन्डिया पब्लिशिंग हाऊस

२३. विनोद भारद्वाज : समकालीन भारतीय कला : एक अंतरंग
अध्ययन
राधाकृष्ण प्रकाशन

२४. डॉ. अविनाश बहादुर वर्मा : कला एवं तकनीक
प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाज़ार बरेली

२५. निहार रंजन राय : भारतीय कला के आयाम
पूर्वोदय प्रकाशन